छोटे नाटक

डॉ॰ शुकदेव सिंह

अनुराग प्रकाशन. वाराणसी

छोटे नाटक

सम्पादक
डॉ० शुकदेव सिंह
रीडर, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

चतुर्थ संस्करण : १९८४ ई०
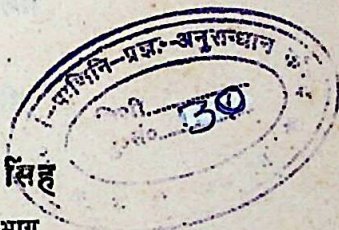
प्रकाशक : अनुराग प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी–१

मुद्रक : विद्या प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्माघाट, वाराणसी–१

भुवनेश्वर की आत्मा
और
अपने मन की शांति
के
लिए

क्रम

'छोटे नाटक' की पहचान

[वृत्त और शिल्प]

वृत्त

● कहानी और उपन्यास की तरह एकांकी नितांत अद्यतन साहित्यविधा नहीं है और न शतप्रतिशत विदेशी साहित्यविधा की अनुकृति में ही इसका विकास हुआ है। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भास का 'उरुभंग' और नीलकण्ठ का 'कल्याण सौगन्धिक' एकांकी ही हैं। यदि एकांकी के अर्थ को थोड़ा विस्तृत कर लिया जाय तो गोष्ठी, नाट्यरासक, उल्लाप्य, व्यायोग, काव्य और अंक को भी एकांकी के विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। इस तरह प्रह्लादन देव का 'पार्थपराक्रम', विश्वनाथ का 'सौगन्धिकाहरण', वत्सराज का 'किरातार्जुनीय', कंचन पंडित का 'धनंजयविजय', मोक्षादित्य का 'भीमविक्रम', रामचन्द्र का 'निर्भय भीम' इत्यादि सभी व्यायोगस्तरीय नाटक एकांकी के इतिहास को

संस्कृत की परम्परा से जोड़ देंगे। संस्कृत में एक दूसरे स्तर के एकांकी भी मिलते हैं जिन्हें नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने 'प्रहसन' कहा है। इन नाटकों की वस्तु और शिल्पसंरचना एकांकी की तरह की हुआ करती है, अतः संस्कृत के 'कन्दर्पकेलि', 'धूर्त्तचरित्रम्', 'लटकमेलक', 'लताकामलेखा', 'धूर्त्तनाटिका', 'हास्य चूड़ामणि' जैसे अनेक प्रहसन भी प्राचीन भारत में एकांकी की स्थिति को दृढ़ करते हैं। संस्कृत का 'भाण' नामक नाट्यरूप यद्यपि एक पात्र के एकालाप के रूप में रचा जाता था लेकिन वामनभट्ट का 'शृंगारभूषण', रामचन्द्र दीक्षित का 'शृंगारतिलक', शंकर का 'श्रद्धातिलक', वत्सराज का 'कर्पूरचरित' एकालाप होते हुए भी एकांकी की रचनात्मक विशेषताओं से पूरी तरह संयुक्त हैं। इन नाटकों के शिल्पसौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वास्तव में एकांकी भारतीय साहित्य के लिए आकस्मिक साहित्यविधा नहीं है।

हिंदी में भी भारतेंदुयुग से 'तन मन गोसाईजी के अर्पण', 'चौपट चपेट', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'कलियुगी जनेऊ', 'शिक्षादान', 'दुःखिनीबाला', 'रेल का विकट खेल' जैसे अनेक छोटे नाटक मिलने लगते हैं जो नाटकीय संरचना की दृष्टि से साधारण और संस्कृत की परम्परा का अनुवाद मात्र हैं। यह सिलसिला काफी समय तक चलता है और द्विवेदी युग में लिखे जाने वाले छोटे नाटक जैसे मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा का 'शेरसिंह', सियाराम शरण का 'कृष्ण', ब्रजलाल शास्त्री का 'दुर्गावती', 'पन्ना', 'तारा', रामसिंह वर्मा का 'रेशमी रूमाल', 'क्रिसमस', सरयूप्रसाद विंदु का 'भयंकर भूत', शिवरामदास गुप्त का 'नाक में दम', रूपनारायण पाण्डेय का 'मूर्ख मण्डली', बेचन शर्मा का 'चार बेचारे' इत्यादि संस्कृत का अनुवर्त्तन करनेवाली रचनाएँ हैं। वास्तव में जयशंकर प्रसाद का 'एकघूंट' ही ऐसा नाटक है जो हिन्दी में पहली बार छोटे नाटक को एकांकी नाटक की गरिमा से जोड़ता है। इस नाटक की रचना संस्कृत की नाट्य परम्परा से होती हुई भारतेंदु युग और द्विवेदी युग की विकसित कड़ी के रूप में हुई है। 'एकघूंट' के प्रकाशनवर्ष अर्थात् १९२८ ई० तक द्विजेंद्र लाल राय तथा रवींद्रनाथ टैगोर के कई नाटक हिंदी में अनूदित हो चुके थे। अतः 'एकघूंट' पर इन नाटकों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। 'एकघूंट' के

संवादों की भाषा पर रवि बाबू की शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव है। यह सर्वविदित है कि रविबाबू पर मैटरलिंक जैसे नाटककार का सीधा प्रभाव पड़ा था। अतः 'एकघूंट' पर मैटरलिंक का अप्रत्यक्ष प्रभाव तो माना ही जा सकता है। इस तर्कपद्धति से जाहिर है कि हिंदी का पहला एकांकी 'एकघूंट' अपनी आधुनिकता के सन्दर्भ में विदेश से भी जुड़ा हुआ है और अधिकांशतः भारतीय ढाँचे में लिखे जाने के कारण देश की परम्परा का भी प्रतिनिधित्व करता हैं। दरअसल 'एकघूंट' का रचना-काल जहाँ आधुनिक ढाँचे के एकांकी का अभ्युदय-काल है वहीं संस्कृत का अनुवर्तन करने वाली परम्परा का सायंकाल भी है। यह इसलिए कि 'एकघूंट' के बाद जो एकांकी हिंदी में लिखे गए वे शैली, संवाद, वस्तु और सम्प्रेषण की सभी क्षमताओं की दृष्टि से बहुत दूर तक विदेशी थे। नाटकों के इस नये ढाँचे को भारतीयता से बिल्कुल अलहृदा करके ही देखा समझा जा सकता है, यदि ऐसा नहीं किया गया तो भुवनेश्वर के एकांकी नाटकों की आकस्मिकता को समझना कठिन हो जायेगा। 'एकघूंट' के रचना-काल के कुल सात वर्ष बाद १९३५ ई० में भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवाँ' एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के नाटक इतने नये और भारतीय ढाँचे से इतने भिन्न थे कि संग्रह के भूमिका-लेखक प्रेमचंद ने भुवनेश्वर को 'आने वाले कल का लेखक' कहा था।

● वास्तव में भुवनेश्वर के नाटक सही अर्थों में समकालीन थे। मध्यवर्गीय जीवन के सारे तनावों को यथार्थ की तीक्ष्णता के साथ इन नाटकों में इस तरह प्रस्तुत किया गया था कि इन नाटकों के प्रभाव से छायावाद युग के लेखक और पाठक समान रूप से चमत्कृत और त्रस्त हो गए थे। भुवनेश्वर को इस सच्चाई का पता था इसीलिए उन्होंने 'कारवाँ' की भूमिका में लिखा था "हमारा आधुनिकयुग एक पागल वृद्धा के समान है, उसे बकने दो। यदि तुम सतर्क नहीं हो तो बर्तन, कुर्सियाँ और टेबल तोड़ने दो।" बर्तनों, कुर्सियों और टेबलों का पता नहीं क्या हुआ, लेकिन इस तेज नजर वाले लेखक की अतीतदृक् लेखकों ने ऐसी उपेक्षा कर दी कि भुवनेश्वर और उनके नाटक क्रमशः गुम हो गए। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो छायावादी गद्य का विस्तार करने

वाले लेखक डा० रामकुमार वर्मा हिंदी एकांकी के जनक नहीं हो गए होते। डा० वर्मा का पहला एकांकी संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' १९३७ में छपा था। यह समय 'कारवाँ' के २ वर्ष बाद का समय है। आश्चर्य तो तब होता है कि इन दोनों संग्रहों के छपने के एक वर्ष बाद 'कारवाँ' की भूमिका लिखने वाले उपन्याससम्राट प्रेमचंद के पुत्र श्रीपत राय ने १९३८ में 'हंस' का एकांकी विशेषांक निकाला और एकांकी नाटक पर अच्छी खासी बहस का वातावरण तैयार किया। इस अवसर पर भुवनेश्वर-मूल्यांकन छूट गया। यदि 'कारवाँ' का सही परीक्षण '३८ में ही हो गया होता तो हिंदी एकांकी और नाटकों का इतिहास वर्षों के लिए छायावाद के उदर में नहीं चला गया होता। जिस आधुनिकता की बात सन् '६० के बाद की गई वह आधुनिकता सन् '४० में ही हिंदी की प्रेरणा बन गई होती और एकांकी के समानान्तर सारी साहित्य-विधाओं का इतिहास भावुकता, अश्लीलता और आंचलिकता के भटकाव में टूटने से बच गया होता।

● भुवनेश्वर को अस्वीकार करने का यह नतीजा हुआ कि हिंदी एकांकी के पाठक 'पृथ्वीराज की आँखें' के पाठक बन गए और 'चारुमित्रा', 'सप्त किरण', 'रूपरंग' 'कौमुदी महोत्सव', 'ध्रुव तारिका', 'ऋतुराज', 'रजतरश्मि', 'दीप-दान', 'कामकंदला', 'इन्द्रधनुष', 'रिमझिम', जैसे छायावादी शीर्षकों में बँधे हुए नाटक पढ़े जाने लगे। इन नाटकों के समानान्तर ऐसे छायावादी लेखकों का एक दल सामने आ गया जो यथार्थवादी तेवर बदल-बदल कर छायावाद के क्रम को ही आगे बढ़ाता रहा। एकांकी नाटक का इतिहास द्वितीय श्रेणी के लेखकों के ही हाथ आया। छायावादी कवि उदयशंकर भट्ट ने १९३३ में 'एक ही कब्र में' शीर्षक नाटक लिखा था। यह नाटक भी इतिहास की कब्र में खो गया होता लेकिन भुवनेश्वर के साथ हुई ऐतिहासिक भूल ने छायावादी एकांकियों के पुनरुत्थान का मौका दिया और एकांकी के क्षेत्र में उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंद दास, उपेंद्रनाथ अश्क जैसे लेखक शलाका-पुरुष में के रूप उदित हुए। भुवनेश्वर पागल कहे जाते हुए धीरे-धीरे लुप्त हो गए और भट्ट, अश्क तथा सेठ जी का नाटक की दुनिया में राज्य हो गया। इन लेखकों की रचनाओं से

जिस नाटकीय समझदारी का सृजन हुआ उसका लाभ लक्ष्मीनारायण मिश्र, जैसे समस्यानाटककार को भी मिला और उन्होंने 'अशोक वन', 'प्रलय के पंख पर', 'एक दिन', 'कावेरी में कमल', 'बलहीन', 'नारी का रंग', 'स्वर्ग में विप्लव', 'भगवान मनु' जैसे बहुत सारे एकांकी लिखे। दूसरे दर्जे के इस नाटककारमंडल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उन्होंने एकांकी नाटकों को रंगमंचीय आधार देकर व्यावहारिक और व्यावसायिक कला के रूप में विकसित किया। रेडियो के प्रचार-प्रसार के कारण एकांकी नाटकों का विकास अवरुद्ध हो गया होता लेकिन इन नाटककारों ने मंच की सारी क्षमताओं का अपने नाटकों में समर्थतापूर्वक उपयोग किया। डा० रामकुमार वर्मा ने तो नाटकों का मंचन करा कर अनुभव की क्षमता से मंच के योग्य नाटक लिखे। भट्ट जी के 'दस हजार', 'दुर्गा', 'नेता', 'उन्नीस सौ पैंतीस,' 'वर निर्वाचन', 'सेठ लाभचंद', 'स्त्री का हृदय', 'नक़ली और असली', 'बड़े आदमी की मृत्यु', 'विष की पुड़िया', 'मुंशी अनोखेलाल' जैसे नाटकों में मंचन की योग्यता का क्रमशः विकास मिलता है। इस दृष्टि से क्रमशः समर्थतर होते हुए उनके नाटकों में 'आदिम युग', 'प्रथम विवाह', 'मनु और मानव', 'समस्या का अंत', 'कुमारसंभव,' 'गिरती दीवारें, 'पिशाचों का नाच'; 'बीमार का इलाज', 'आत्मप्रदान', 'जीवन', 'वापसी', 'मंदिर के द्वार पर', 'दो अतिथि', 'अघटित', 'अंधकार', 'नए मेहमान', 'विस्फोट' उल्लेखनीय हैं। उनकी क्षमता का चरम विकास 'यह स्वतंत्रता का युग', 'मायोपिया', 'अपनी-अपनी खाट पर', 'ग्रहदशा' और 'परदे के पीछे' में मिलता है। उन्होंने 'गांधी का रामराज्य', 'धर्मपरम्परा', 'एकला चलो रे', 'अमरअर्चना', 'मालती माधव', 'वन महोत्सव', 'मदन महल', जैसे रेडियो नाटक भी लिखे लेकिन इन नाटकों की मानसिकता और रचनाशक्ति उनके एकांकियों से अलग कोई खास पहचान नहीं बना पाती। उनके भावनाट्य और गीतिनाट्य इसलिए स्वीकार किए गए कि वे छायावादी रुझान के सीधे क्रम में थे और उनके कविव्यक्तित्व के बहुत पास पड़ते थे।

● सेठ गोविंददास गांधीवादी अन्तर्दृष्टि और पूंजीवादी विवेक के रचना-

कार है। पूंजीवाद का पक्ष पुष्ट करने वाले वर्गचेतना-शून्य मानवतावाद की स्थापना के लिए उन्होंने अपनी रचनाशक्ति का अधिक से अधिक उपयोग अधिक से अधिक लिख कर किया। प्रविधि की दृष्टि से उन्होंने कई तरह के प्रयोग भी किए हैं परन्तु उनके सारे प्रयोग ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और राजनैतिक कथानकों के नाट्य रूपान्तर मात्र हैं। मंच की दृष्टि से उनके नाटक अभिनयक्षमता की अपेक्षा वर्णन-क्षमता का अधिक भरोसा करते जान पड़ते हैं। एक निर्धारित उद्देश्य के आस-पास उनकी कथाएं योजना-बद्ध ढंग से यात्रा करती है और प्रभाव की दृष्टि से नाटकीयता की कम से कम चिंता करते हुए प्रवचन की शर्तों में खो जाती हैं। 'बुद्ध की एक शिष्या', 'बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन ?', 'नानक की नमाज', 'एक बहादुर की भविष्य वाणी', 'परमहंस का पत्नी प्रेम', इत्यादि नाटकों में ऐतिहासिक नुस्खों को प्रवचन की कुशलता से सम्पन्न किया गया है। 'कृषि यज्ञ' में पौराणिक वातावरण है और 'स्पर्धा,' 'मानव मन', 'जाति उत्थान', 'ईद और होली' तथा 'सच्चा कांग्रेसी कौन ?' इत्यादि में सामाजिक, राजनीतिक तथ्यों को बिना किसी नाटकीय तर्क के सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

● उपेंद्रनाथ 'अश्क' कहानियाँ लिखने का लम्बा अनुभव लिए हुए साथ ही नाटक करने-कराने की समझदारी लेकर एकांकी के क्षेत्र में उदित हुए। उनका पूरा व्यक्तित्व अत्यंत नाटकीय है इसलिए न चाह कर भी वे हर तीन घण्टे में एक एकांकी में अपनी उम्र पूरी करते रहते हैं। उन्होंने जितना लिखा है बहुत ज्यादा है, फिर भी उनकी नाटकीयता के लिहाज से बहुत कम है। भुवनेश्वर के बाद अश्क हिंदी के दूसरे महत्वपूर्ण नाटककार हैं, जिन्होंने एकांकी नाटक को पूरी जिम्मेदारी और कला के साथ रचने की चेष्टा की है। यही कारण है कि उनके संवाद अर्थपूर्ण, सांकेतिक तथा चटुल हैं। संवादों की सफलता पूरा नाटक नहीं हुआ करते। व्यावसायिक चतुराई को नाटक की रचनाप्रक्रिया से जोड़ देने के कारण उनके नाटकों में एक प्रकार की शठ नाटकीयता और दीप्ति तो आ जाती है लेकिन यह ठहरने वाली चमक नहीं होती, न इसे सही अर्थों में हम सार्थक नाटक ही कह सकते हैं। रचना जब रोज़गार से सीधे जुड़ जाती है तो वह कला के छल को ही प्राप्त कर पाती

है, कला को नहीं। यह सब होने पर भी हिंदी में एकांकियों का जो स्तर है उस दृष्टि से उनके 'पापी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'मोहब्बत', 'क्रासवर्ड पहेली', 'अधिकार का रक्षक', 'आपस का समझौता', 'स्वर्ग की झलक', 'विवाह के दिन', 'जोंक', चरवाहे', 'चिलमन', 'खिड़की', 'चुम्बक', 'देवताओं की छाया में', 'चमत्कार', 'सूखी डाली', 'अंधी गली', 'आदिमार्ग', 'बतसिया', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'सयाना मालिक', 'जीवन साथी', इत्यादि काफी रोचक एकांकी हैं। अश्क ने एकांकी लिखना बंद करके उपन्यास पर अच्छी जोर आजमाइश शुरू कर दी है। यह जोर आजमाइश उपन्यासकार के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करे न करे, उनके आगामी एकांकी के लिए एक जोरदार कथावस्तु तो अवश्य है।

● एकांकीकारों की सूची में गणेशप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रयोगधर्मी नाटककार का नाम भी छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए कि गुमशुदा लेखक भुवनेश्वर प्रसाद की रचना-पद्धति को उन्होंने काफी दूर तक स्वायत्त करने का प्रयत्न किया था। 'सोहाग बिंदी' 'वह फिर आई थी', 'परदे का अपर पार्श्व' जैसे कई नाटकों ने आलोचकों के मन में अच्छी उम्मीद पैदा की थी लेकिन वे पहले दर्जे के नाटककार के रूप में विकसित नहीं हो पाए। उनके 'शर्माजी', दूसरा उपाय ही क्या है ?', 'सर्वस्व समर्पण', 'कामरेडगोष्ठी', 'परीक्षा', 'रपट', 'रिहर्सल' और 'धरतीमाता' इत्यादि नाटकों ने साबित कर दिया कि द्विवेदी जी की रचनाक्रिया की निर्धारित सीमाएँ हैं। नाटक उनकी रचना-शक्ति से न बहुत आगे ही जाने वाला है, न समकालीन समस्याओं को तर्क-शक्ति से पुष्ट बना कर सही रचना में परिवर्तित ही करने वाला है। स्त्री-पुरुष का जैविक आकर्षण और प्रेमवैषम्य जैसी आदिम समस्याओं को उठाते हुए वे दाम्पत्य संबंधों की जटिलता के रचनाकार बनकर रह गए। न उनमें भुवनेश्वर जैसी तल्खी है, न बेबाक भावुकताशून्य तर्क की रचनात्मक तीक्ष्णता ही।

● जगदीशचंद्र माथुर की स्थिति भिन्न है। उनका 'मेरी बाँसुरी' शीर्षक नाटक '३६ में प्रकाशित हुआ था और एकांकी के समीक्षकों को उनमें संभावनाएँ दिखाई पड़ी थीं। माथुरजी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी नाटकीय समझदारी

में है। वे नाटक को एक पूर्ण क्रिया के रूप में लेते हैं और वांछित अर्थ तक पहुँचने के लिए केवल संवाद और कहानी पर भरोसा न करके अभिनय की सारी संभावनाओं पर भरोसा करते हैं। इसीलिए उनके एकांकी नाटक के वाच्य-अवाच्य दोनों साधनों का पूरी तरह से प्रयोग करते हैं। भुवनेश्वर के एकांकियों की तरह आहत करने वाली वेबाकी तो उनमें नहीं है. लेकिन रचना और अर्थ दोनों के सही अनुपात के कारण उनके एकांकियों को कहीं से त्रुटित कहना मुश्किल है। 'भोर का तारा', 'कलिंगविजय', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'खण्डहर', 'खिड़की की राह,' 'घोंसले', 'कबूतरखाना', 'भाषण', 'ओ मेरे सपने', 'शारदीय', 'वंदी' इत्यादि उनके ऐसे निर्दोष एकांकी हैं जिन्हें एकांकी के नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह जान लेना जरूरी है कि माथुर की सफलता त्रुटिहीनता के कारण है। उनके एकांकी किसी नई जमीन को नहीं तोड़ते महज एकांकी के कौशल को निर्धारित करते हैं, एकांकी के इतिहास को आगे नहीं बढ़ाते।

● निर्दोष नाटक लिखने वालों में पुराने खेवे के नाटककार गोविंदवल्लभ पंत भी हैं। 'मार्कण्डेय पुराण' की कथा को लेकर उन्होंने बहुत पहले 'वरमाला' नामक नाटक लिखा था जो तकनीकी बारीकियों को दृष्टि से बड़ा ही सधा हुआ नाटक था। मेवाड़ की पन्ना धाय को लेकर 'राजमुकुट' नामक नाटक लिखकर ऐतिहासिक नाटककार के रूप में पंतजी ने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। इनका 'अंगूर की वेटी' शीर्षक नाटक शराबखोरी की मुसीबतों को लेकर लिखा हुआ नाटक था। इन नाटकों के कारण पंत जी नाटककारों की सूची के अनिवार्य व्यक्ति हो गए। यही कारण है कि अपेक्षाकृत कम लिखने पर भी एकांकी के क्षेत्र में भी इनका विस्मरण नहीं किया जा सकता। 'विष-कन्या' शीर्षक इनका एकांकी छायावादी संवेदना से पूर्ण होते हुए भी सामंत-युगीन नारी के तनावों और नियति को अत्यंत नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है। उनके एकांकी संख्या में कम और रचनात्मकता की दृष्टि से उच्चस्तरीय न होने पर भी शुद्धि के कारण विस्मरण नहीं किए जायेंगे। पंत जी की तरह ही हरिकृष्ण 'प्रेमी' भी मध्यम श्रेणी के शुद्ध नाट्य कृती हैं। प्रसाद जी के नाटकों से पैटर्न लेकर उन्होंने मुगलकालीन इतिहास-कथाओं को राष्ट्रीय

चेतना के लिए माध्यम तथ्य बनाया था। इनके नाटकों ने निर्दोष होने के कारण आरम्भ में ही आलोचकों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। यही कारण है कि मध्यकालीन मानसिकता और छायावादी रचना-शैली के बावजूद इनके नाटक अध्ययन-अध्यापन के कार्य में अधिक से अधिक इस्तेमाल किए गए। इन्होंने जो एकांकी लिखे वे संख्या में कम हैं किन्तु गोविंदवल्लभ पंत के नाटकों की तरह ही साफ-सुथरे नाटक हैं। 'प्रेमी' के अतिरिक्त पृथ्वीराज शर्मा, भगवतीचरण वर्मा इत्यादि ने भी लोकप्रिय नाटक लिखे लेकिन एकांकी के इतिहास में मध्यमस्तरीय नाटककारों का प्रतिनिधित्व विष्णु 'प्रभाकर' ही करते हैं।

● विष्णु प्रभाकर' सेठ गोविंददास के आधुनिक पुनरुत्थान हैं। वही मानवतावाद, वही गाँधीवाद, वही खादी और सादी जिंदगी की हिमायत 'प्रभाकर' में भी है। अन्तर इतना ही है कि विष्णु जी मनोविश्लेषण तथा राजनीतिक जीवन की हलचलों में कुछ और गहराई तक धँसते हैं और अन्ततः मानवता और सहज सौंदर्य की विजय का नुस्खा उसी तरह इस्तेमाल करते हैं जैसे सेठ जी। श्री प्रभाकर के नाटकों की संख्या बहुत बड़ी है। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, प्रहसन स्तरीय, पौराणिक, प्रचारात्मक, रेडियो के काम आने वाला हर स्तर का लेखन किया। 'बंधनमुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध', 'इंसान', 'देवताओं की घाटी', 'वीरपूजा', चंद्रकिरण', 'रक्त चंदन', 'माँ', 'भाई', 'बँटवारा', 'विभाजन'—जैसे सामाजिक; 'हत्या के बाद', 'कांग्रेस मैन बनो' जैसे राजनीतिक; 'ममता का विष', एक ही बात में', 'मुरब्बी', 'रहमान का बेटा', 'जहाँ दया पाप है' जैसे मनोवैज्ञानिक; प्रोफेसर', 'लोग', 'गीत के बोल', 'भूख', 'सरकारी नौकरी', 'कार्यक्रम', जैसे विदूषकी; 'अशोक', 'परिवेदन', नहुष का पतन,' 'देवताओं का प्यारा' जैसे पौराणिक; 'स्वाधीनतासंग्राम', 'संयम', 'स्वतंत्रता का अर्थ', 'मजदूर और राष्ट्र चरित्र', सर्वोदय', 'सहिष्णुता', 'शिक्षा', 'नारी', 'अनुशासन', नया समाज', 'कांग्रेस और सांस्कृतिक उन्नति', 'पड़ोसी', 'समाज सेवा', 'राजस्थान', 'मध्य भारत', 'नया काश्मीर', 'जमींदारी उन्मूलन', 'पंचायत' और 'चोरहाट' जैसे प्रचारा-

त्मक; 'ढोलामारू', 'कमला', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'समाज के स्तंभ', 'सूरदास', 'आश्रिता', 'मुक्ति मार्ग', रेडियो धर्मी और 'ईमानदार लड़का', 'सफाई', 'माँ का बेटा', जैसे सैकड़ों बालकोपयोगी छोटे नाटक लिखे हैं। इन सारे नाटकों को देखने से ऐसा लगता है कि विष्णु प्रभाकर जी चाहें तो पराठा और तरकारी को भी तोड़मोड़ कर एकांकी नाटक बना सकते हैं। इनके किसी भी नाटक में वस्तु (कांटेण्ट) और स्वरूप (फॉर्म) का कोई सहसम्बन्ध नहीं दिखलाई पड़ता। शायद विष्णु जी यह समझते ही नहीं कि नाटकीय वस्तु को ही नाटकीय स्वरूप दिया जासकता है। काव्य, कहानी, या भाषण की वस्तु को नाट्यवस्तु नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने धड़ल्ले से अनेक कहानियों, उपन्यासों का नाट्य रूपान्तर किया है। शायद उन्हें यह नहीं मालूम कि वस्तु ही वह रचनात्मक इकाई है जो अपनी सम्भावनाओं के अनुरूप आकार ले लिया करती है। यही वजह है कि विष्णु प्रभाकर के नाटकों को पढ़ते समय, कहानी, कविता, उपन्यास, भाषण, रोदन चाहे जिस चीज का मजा मिल जाय नाटकीय स्तर पर संप्रेषण नहीं होता।

● विष्णु प्रभाकर के बाद लक्ष्य करने योग्य एकांकीकार जयनाथ नलिन हैं जिन्होंने जे० ओ० फ्रांसिस के नाटकों से प्रभावित होकर विदूषकी स्थितियों की सहायता से स्थितिधर्मी नाटक लिखे हैं। चरित्र रचना और समस्या के अभिस्तवन को लेकर हिंदी एकांकी जिस तरह की गतिहीनता में जड़ हो रहा था उसे तोड़ने की कोशिश भुवनेश्वर के बाद नलिन ने ही की। 'देश की मिट्टी', 'लालदिन', 'फिलासफर', 'मेहमान', 'कन्वेंसिंग', 'सागर तट पर', 'फिल्मी कहानी', 'डेमोक्रेसी', 'नवाबी सनक'. 'चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी', 'संवेदना सदन', 'बाबू उधार चंद', 'शर्बत सम्मेलन', 'बड़े आदमी', 'वरनिर्वाचन', 'नेता', 'मेल मिलाप, और 'लस्सी का गिलास' इत्यादि उनके महत्वपूर्ण एकांकी हैं। इन सारे एकांकियों में नलिन ने नाटक के पुराने ढांचे को इन्कार करने का प्रयत्न किया है। लेकिन नलिन में न भुवनेश्वर वाली तल्खी है, न तथ्यों से सम्बन्धित बेबाकी। इसीलिए उनके नाटक पुराने नाटकों की ऊब तो जरूर मिटाते हैं लेकिन रचना के स्तर पर एकांकी को कुछ आगे ले जा पाने में असमर्थ ही रह जाते हैं।

● एकांकी के इतिहास से जुड़ा हुआ एक नाटकीय दुर्भाग्य यह है कि एकांकी

की रचना को अच्छे खासे समझदार साहित्यकार भी खेल की चीज (खेलने की नहीं) समझते रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योत्स्ना' और जैनेंद्र ने 'टकराहट' लिखकर कविता और कहानी को मर्जीमुताबिक नाटक बना लेने की भूल की थी। 'ज्योत्स्ना' नाटकीय कलेवर में एक लंबी छायावादी कविता है और 'टकराहट' एकांकी के ढांचे में एक मुड़ी-तुड़ी कहानी। गनीमत है कि इस तरह की गलती आगे चलकर न पंत ने की, न जैनेंद्र ने। लेकिन इससे होता क्या है, बुजुर्ग जो पौध रोप जाते हैं उसे काट देने पर उसकी जड़ों से कल्ले तो फूटेंगे ही। इसी तरह के कल्ले 'नदी प्यासी थी' शीर्षक एकांकी-संग्रह के नाटक हैं जिनके रचयिता कवि कथाकार धर्मवीर भारती हैं। इस संग्रह में पाँच एकांकी हैं। 'नदी प्यासी थी' में एक ऐसे युवक को व्यक्त किया गया है जो जीवन की कुरूपताओं से ऊबा हुआ और डरा हुआ है। 'नीली झील' में प्रतिक्रियावाद की पक्षधरता करते हुए साम्यवाद के आतंकों से आगाह किया गया है। 'आवाज का नीलाम', संभवतः भारती जी का अपना ही भविष्य है। किस तरह पूंजी-वादी अर्थव्यवस्था एक पत्रकार को खरीद लिया करती है इसे उन्होंने घुटघुट कर लिखा है। 'सृष्टि का आखिरी आदमी' और 'संगमरमर पर एक रात' नामक दोनों नाटक काफी पुराने ढर्रे के हैं और बड़ी आसानी से लेखक को लेखक के गुरु डा० रामकुमार वर्मा की नलद अश्रु भावुकता तक पहुँचा देते हैं।

● डा० लक्ष्मी नारायण लाल ने कहानी की शिल्प-विधि की खोज करते समय ही शिल्प को आधिकारिक रूप से अपने वश में कर लिया था। इस वशी-भूत शिल्प का इस्तेमाल उन्होंने नाटकीय ढंग से किया। ग्रामीण जीवन की भाषा और समझदारी के साथ उन्होंने गाँव के अभिशप्त जीवन को, करुण असंगतियों की सहायता से अपने एकांकियों में उत्कीर्ण किया। वैसे डॉ० लाल की रचनाओं के कई-कई आयाम हैं जिन्हें जानकर यही लगता है कि डॉ० लाल क्या नहीं कर सकते। 'पर्वत के पीछे', 'ताजमहल के आँसू' और 'बहुरंगी' उनके तीन एकांकी संग्रह हैं। इन नाटकों के द्वारा उन्होंने यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि यदि वे चाहें तो नाटक को नागरिक कला के रूप में लिख सकते हैं

और चाहें तो ग्रामीण कला के रूप में। 'बहुरंगी' संग्रह के नाटकों में उनकी ग्रामीण कला दिखायी पड़ती है। 'मम्मी ठकुराइन', 'औलादी का बेटा' और 'गली की शांती' जैसे नाटकों में जहाँ एक ओर समाज के निचले वर्ग की जिंदगी के दुख-सुख से लेकर रंडियों की मजबूरी तक का उन्होंने चित्रण किया है वहीं उन्होंने 'जादूबंगाल', 'शाकाहारी' जैसे ग्रामीण नाटक भी लिखे हैं। डॉ० लाल के प्रभूत लेखन और अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार के बावजूद यह तबीयत होती है कि उनसे निवेदन किया जाय कि वे थोड़ी मेहनत करके हिंदी का सही वाक्यविन्यास लिखना सीख लें फिर नाटक तो वह लिख ही सकते हैं। उनके पास लम्बा अनुभव और विचित्र चालाकी दोनों हैं।

● विनोद रस्तोगी ने 'पुरुष का पाप', 'पत्नी परित्याग', 'साम्राज्य और सुहागरात', 'सौंदर्य का प्रायश्चित्त', 'आज मेरा विवाह है', 'दो चाँद', प्यास और प्यास', 'काला दाग', 'कसम कुरान की', 'सोना और मिट्टी', 'रथ के पहिये', 'पैसा', 'जनसेवा और लड़की', 'मुन्ना मर गया', 'मंगल, मानव और मशीन' जैसे दर्जनों नाटक लिखे हैं। उनके नाटकों ने हिंदी एकांकियों के इतिहास में अलग से कोई पहचान तो नहीं बनाई है लेकिन महत्वपूर्ण संख्या-वृद्धि अवश्य की है। अगर वे इसी तरह लिखते रहे तो हिंदी साहित्य को हजारों एकांकी सहज ही उपलब्ध हो जायेंगे। इतना जरूर है कि रस्तोगी के नाटक शिल्प की दृष्टि से काफी दूर तक साफ-सुथरे होते हैं और अन्तर्दृष्टि तथा नाटकीय स्थितियों की पकड़ की कमी के बावजूद एकांकी लगते हैं।

रस्तोगी के स्तर के ही नाटक राजपूत मलिक के भी हैं। 'आंधी का दिया', 'मिटती परछाइयाँ', 'जमीन-आसमाँ', 'चोर', 'रोज की बात', 'हाथी के दाँत', 'भूखी आँखें', 'शीशे का घर', 'कविता का भूत'. 'घरौंदा', 'धुएँ के बादल', 'बरगद का पेड़', 'डायन', 'पहली रात', 'दिन की दीवाली', 'रजनी-गंधा',

'धरोहर', 'कवि-प्रिया', 'दोहरा व्यक्तित्व', 'टूटती कड़ी', 'संशय', 'संमोहन' जैसे नाटकों में प्रेम-समस्या से लेकर यौन-कुंठा की मार्मिक अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। इनके नाटक बहुत संक्षिप्त होने के बावजूद साधारण और द्वितीय श्रेणी के ही हैं। सत्येंद्र 'शरत' नामक नाटककार ने भी बर्नार्डशॉ की शैली पकड़ कर 'शोहदा', 'गुडबाई', 'तार के खंभे', 'करेंसी', 'खंडहर', 'गर्मी और रोशनी' जैसे कई नाटक लिखे हैं। इनके नाटकों में समकालीन जिंदगी की पहचान तो मिलती है लेकिन अभिनेयता और रचनात्मकता का सानुपात समन्वय नहीं होता।

● यह संयोग है कि कहानी और उपन्यास की तरह लोकप्रिय होने पर भी एकांकी नाटकों का लेखन अनुपाततः कम हुआ है और हिंदी लेखकों ने बराबर यह समझा है कि एकांकी लेखन अपेक्षाकृत जटिल कार्य है। फिर भी एकांकियों की संख्या कम नहीं होने की वजह है। हिंदी में साहित्य मात्र को 'सर्व लेखकान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' की आकांक्षा रखने वाले विराट् व्यक्तित्व भी हैं। जैसे कविता, कहानी, नाटक, निबंध, इतिहास, कला, पुरातत्व और चित्ररचना की कला में समान अधिकार रखने वाले लेखकों में डॉ० प्रभाकर माचवेजी शीर्ष-स्थानीय हैं। उन्होंने 'गली की मोड़ पर', 'पागलखाने में', 'पंच कन्या', 'पर्वत श्री', 'राम गिरि', 'संकट पर संकट', 'वधू चाहिए', 'गाँधी की राह पर' शीर्षक अनेक एकांकी लिखे हैं। उनके एकांकी उतने ही सफल हैं जितनी कविताएँ अथवा निबन्ध अथवा उपन्यास अथवा समीक्षाएँ। माचवेजी के बाद उन्हीं की श्रेणी के लेखकों में रेवतीशरण शर्मा, राजेन्द्रकुमार शर्मा, कर्तारसिंह दुग्गल, राजाराम शास्त्री, गंगाधर शुक्ल, कहानीकार मार्कण्डेय, राजीव सक्सेना, लक्ष्मीकांत वर्मा, रमेश बक्षी जैसे दर्जनों लेखक हैं जो नाटक भी लिखते हैं। इन्होंने 'अभागिन', 'मुझे जीने दो', 'फूल और चिनगारी', 'अटैची केस', 'कहानी कैसे बनी', 'पत्थर और परछाइँ', 'उतरा-नशा', 'पहली तारीख', 'नागफांस', 'चाय की प्याली', 'आदमी का जहर', 'देवयानी का कहना है' इत्यादि एकांकी और एकांकी-संग्रह तैयार किये हैं। इन नाटककारों के कई नाटकों में नाटकीय स्फूर्ति तो है लेकिन एकांकी लेखन के लिए न ये प्रतिबद्ध हैं,

न एकांकी लेखन को इन्होंने बहुत गम्भीरता से लिया है। इस तरह के स्फुट लेखकों से अलग चिरंजीत अकेले नाटककार हैं जिन्होंने रेडियो और रंगमंच की सारी जटिलताओं को समझते हुए एकांकी लेखन के स्तर को आगे बढ़ाया है। उनकी 'दादीमाँ जागी' और 'रंगारंग' शीर्षक संग्रहों के नाटक नाटकीयता की सारी शर्तों को पूरा करते हैं। रचनातत्व और साहित्यिकता उसमें अपेक्षाकृत कम है लेकिन उनके नाटकों को एकांकी के नमूने के रूप में रखकर एकांकी की तकनीक को समझा-समझाया जा सकता है। वास्तव में रचनातत्व और नाटकीयता की दृष्टि से विशुद्ध एकांकी तो मोहन राकेश ही लिख सकते थे जिनके 'अंडे के छिलके' संग्रह में एक संभावित एकांकीकार की सारी क्षमताएँ मौजूद हैं। स्मरण राजकमल चौधरी का भी आवश्यक है जिसने 'भग्नस्तूप का एक अक्षत स्तंभ' नाटक में एकांकी की सीमा का विस्तार किया है।

शिल्प

● यद्यपि एक खास तरह के ढाँचे के नाटकों के लिए 'एकांकी' नाम काफी रूढ़ हो गया है लेकिन एकांकी की मर्यादा के भीतर इतने भिन्न-भिन्न स्तरों के नाटक लिखे गये हैं कि यह नाम पूर्ण नहीं लगता। एक 'अंक' का जो अनुशासन होता है उसे भी ये नाटक बराबर तोड़ते हैं। वस्तु और संरचना की दृष्टि से ये 'नाटकों' के इतने समान्तर होते हैं कि इन्हें सुविधा के लिए 'छोटे नाटक' ही कहना उपयुक्त जान पड़ता है। डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ने हिंदी के कुछ प्रयोग-धर्मी एकांकीप्राय नाटकों की संघटना और जटिलता को ध्यान में रखकर ऐसे नाटकों को 'लघुनाटक' कहा था। उनके संग्रह में भुवनेश्वर से लेकर राजकमल चौधरी तक के नाटक हैं। वास्तव में 'एकांकी' नाम अपनी सार्थकता खो चुका

है। अब इस तरह के नाटकों की सारी भंगिमाओं को सम्पूर्ण सार्थक नाम 'छोटे नाटक' ही दिया जा सकता है।

● एकांकी ढाँचे के छोटे नाटकों की रचना-प्रविधि में क्रमश विस्तार और बदलाव आया है। यह बदलाव सबसे पहले रंग-निर्देश से सम्बन्धित भाषा और प्रयोग में दिखाई पड़ता है। पुराने नाटकों में, चाहे वह भारतेंदु के हों या प्रसाद का 'एक घूंट' हो, रंगनिर्देश रचना का नगण्य भाग हुआ करता था। भुवनेश्वर और रामकुमार वर्मा के नाटकों में रंग-निर्देश को नाटक के अर्थ से जुड़े हुए एक महत्वपूर्ण अंश के रूप में महत्व मिला। भुवनेश्वर ने वातावरण-रचना, वस्तु-प्रस्तावना और नाट्यस्थिति को व्यक्त करने के लिए गम्भीरतापूर्वक लम्बे रंग-निर्देश लिखे। ये रंग-निर्देश नाटक के अवाच्य और अभिनेय अर्थ को पूरी गहराई से व्यक्त करते हैं और नाट्यनिर्देशन का सार्थक अनुशासन करते हैं। मंचन से अलग पठनीयता के स्तर पर भी भुवनेश्वर के रंगनिर्देश ऐसे नहीं है कि जिन्हें पढ़े और समझे बिना नाटक को सम्पूर्णतः समझा जा सके। नाटक में कभी-कभी क्रिया की दृष्टि से एक तरह का ठहराव आ जाता है। इस तरह के ठहरावों को रंगनिर्देशन के द्वारा ही सार्थक बनाया जाता है। 'ऊसर' नाटक में एक स्थान पर 'गृहस्वामी' और 'युवक' के बीच संवाद ठहर चुका है। इस ठहरे हुए संवाद के भीतर क्रियाएँ हैं जिन्हें व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है 'गृहस्वामी जैसे इस जवाब से सन्तुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और युवक की तरफ से फिर कर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने संतोष से देखा और फिर बैठ गया.........' यह रंगनिर्देश, निश्चित रूप से संवादेतर नाट्यक्रिया है और नाटक में शब्दातीत स्तर पर अर्थ को निर्मित करने के लिए इस्तेमाल किया गया है। इसी तरह रामकुमार वर्मा ने नाटक के भावुक वातावरण को रचने के लिए लंबे रंग-निर्देश लिखे हैं। यह दूसरी बात है कि वर्मा के नाटकीय रंग-निर्देशों में, शब्दातीत नाटकीय स्थितियों को व्यक्त करने वाली क्षमता नहीं है। भुवनेश्वर के अतिरिक्त बहुत सारे नाटककारों ने रंग-निर्देश का नाटक के अवाच्य अर्थभाग को व्यक्त करने के लिए

इस्तेमाल किया है। रंग-निर्देश के बाद छोटे नाटकों की महत्वपूर्ण इकाई उनका संवाद है। संवाद का यह मतलब नहीं होता कि वह एक पात्र और दूसरे पात्र के सवाल-जवाब के क्रम में हो। संवाद और उसका कोई हिस्सा उठाये गये सवाल का जवाब न होकर भी ऐसा असंबद्ध वक्तव्य हो सकता है जो नाटक के अर्थ या व्यापार से जुड़ा हुआ हो। दरअसल छोटे नाटकों के संवादों में आमने-सामने की स्थिति नहीं होती, निरंतरता की स्थिति होती है। यह निरंतरता अभीप्सित केन्द्र की ओर बढ़ती रहती है। इसीलिए एकांकी के अनुशासन के बाहर आ जानेवाले नाटकों में बात कम होती है, काम ज्यादा होता है; काम यानी नाटकीय कलाप। यह नाटकीय कलाप पुराने ढाँचे के एकांकियों में कथा-वस्तु के स्तरों या नाटकों की समस्या को खोला करता था लेकिन सही समझ-दारी के नाटकों में ऐसी स्थिति नहीं है। बेतरतीबी के बावजूद संवाद नाटक में निहित वक्तव्य की ओर आगे बढ़ते हैं इसलिए कि सारे बिखराव के बावजूद इन संवादों में एक संश्लिष्ट सघनता और कसावट होती है। यह सघनता ही वह कसौटी है जो मामूली नाटककार और विशिष्ट नाटककार को अलग करती है। वास्तव में सही नाट्यभाषा वही है जो कथावस्तु को क्रम-क्रम से खोल सके, नाटककार के वक्तव्य को आगे बढ़ा सके और इसके साथ पाठक या प्रेक्षक के दिल में वांछित गहराई और ऊँचाई के छोर बना सके। अगर नाट्यभाषा रचनाकार और प्रेक्षक के बीच रचना करने की जिम्मेदारी नहीं निबाहती तो वह नाटककार का प्रवचन मात्र बनकर रह जायगी।

● एकांकी या छोटे नाटकों में नाट्य भाषा के सही इस्तेमाल के कारण जो बदलाव आया है उसे स्वगतकथनों की कमी के रूप में देखा जा सकता है। पहले के नाटकों में स्वगतकथन अत्यंत व्यर्थ, अस्वाभाविक, झूठे और अविश्वस-नीय हुआ करते थे। अब एकालापी नाटकों के संवाद भी क्रिया से संबद्ध और विश्वसनीय होते हैं। संवादों की स्वाभाविकता की रक्षा के लिए लंबे संवादों

की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। अब संवाद छोटे-छोटे और व्यावहारिक होने लगे हैं। वेशभूषा, तत्सम और सांस्कृतिक शब्दों की जगह पर क्रियाओं से बँधे हुए संवाद ही अब अधिक व्यवहृत होते हैं। दरअसल अब यह भ्रम मिट गया है कि नाटक संवादों के समूह का नाम है। अब नाटककार जानने और समझने लगे हैं कि नाटक क्रिया की अन्विति को कहते हैं।

● एकांक नाटकों ने 'नाटक भी कविता ही है' इस धारणा को केवल तोड़ा ही नहीं है, पूरी तरह खत्म कर दिया है। नाटकों में, संवाद और गीत के नाम से जो काव्य-सामग्री हुआ करती थी उसे भी क्रमशः अस्वीकार किया गया है। दरअसल अब नाटक काव्यविधा से बाहर निकलकर गद्य के क्षेत्र में आ चुका है और गद्यविधा के रूप में इसका विकास शुरू हो गया है। अरसे तक उपन्यासों, कहानियों और प्रबंध-काव्यों के नाट्य रूपान्तर होते रहे हैं जिससे यह भ्रम दृढ़ हुआ करता था कि नाटक की अपनी कोई विधा नहीं है, महज एक ढाँचा मात्र है जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास किसी विधा को ढाला जा सकता है। अब समझदार नाटककारों ने समझ लिया है कि नाट्य वस्तु ही नाटक का रूप ले सकती है; काव्य या उपन्यास की वस्तु से नाटक नहीं लिखा जा सकता। इस नई और गहरी समझदारी का नतीजा यह हुआ है कि नाटक वस्तु और शिल्प के सह-अस्तित्व को स्वीकार कर प्रामाणिक रचनापद्धति आविष्कृत करने में लग गया है।

● पात्रों के निर्धारित चरित्र, निर्धारित भाषा और निर्धारित कार्य के अनुशासन को भी छोटे नाटकों ने बहुत दूर तक अस्वीकार किया है। पहले के नाटकों के औरत-मर्द, विदूषक, सच्चरित्र और खल कई तरह के बँटवारे हुआ करते थे। अब इस तरह के बँटवारे खत्म हो रहे हैं। मुख्य पात्र भी विदूषकी क्रियाएँ कर सकता है और खल पात्र भी सदाशय कार्य। दरअसल नाटकों में अब आदमी आते हैं जो चारों तरफ से आदमी होते हैं। इस तरह नाटकीय पात्रों के चयन में स्वाभाविकता की नीति को अपना लिया गया है। पढ़ने वाले और खेलने वाले नाटक के फर्क को समझ लेने के कारण अब नाटककार मंचन

की बारीकियों को जानकर ही नाटक लिखने का प्रयास करते हैं। इस तरह के नाटक पठनीयता के स्तर पर पाठक को एक तरह की मंच कल्पना से भी बाँधते हैं। यदि पाठक में मंच-कल्पना नहीं है तो वह नाटक को टुकड़ों में ही समझेगा। उसे नाटक में अर्थसम्बन्धी अंतराल दिखाई पड़ेंगे अर्थात् आधुनिक एकांकियों ने पाठक-प्रेक्षक के लिए एक खास तरह की प्रशिक्षण और विशेष तरह की सृजन-क्षमता अनिवार्य कर दी है। सृजन-क्षमता के बिना न प्रामाणिक नाटक कोई देख सकता है न पढ़-समझ सकता है। तमाशाई लोगों के लिए नाटक अब जटिल है।

अप्रैल, १९७९ —शुकदेव सिंह

पुनश्च ! नाटक की एक सर्वथा नयी विधा रेडियो नाटक के रूप में सामने आयी है। एकबार फिर इस स्तर पर आकर नाटक 'दृश्य काल' की सारी सीमाओं को अतिक्रमित कर शुद्ध 'श्रव्य' बन गया है। लेकिन यह श्रव्यता. नाटकीयता के भीतर विकसित हुई है। संवाद से जुड़े तमाम 'काकु' और 'वृत्त' ध्वनि में ही अन्तर्निहित हो गये हैं। रेडियो नाटक में ध्वनि को प्रकाश, दूरी, गति, त्वरा और मुद्रा की नाटकीय जटिलताओं में रूपान्तरित किया जाता है। उदाहरण के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध कलाकृति 'कर्मनाशा की हार' की श्रव्यता का पाठ करें।

अप्रैल, १९८४ —शुकदेव सिंह

औरंगजेब की आखिरी रात

•

डॉ० रामकुमार वर्मा

[१९०५ ई०]

पात्र-परिचय

आलमगीर औरंगजेब : मुगल सम्राट्

ज़ीनत-उन्निसा बेगम : आलमगीर औरंगजेब की पुत्री

करीम : एक सिपाही

हकीम और कातिब

स्थान : अहमदनगर का किला

समय : १८ फरवरी, सन् १७०७

रात्रि के ३ बजे।

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगजेब ने मराठों का अन्त करने का निश्चय किया तो उन्हें अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी।

उन्होंने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को सपरिवार बन्दी कर लिया और उनके सामने इस्लाम-धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रखा, तो शम्भाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगजेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया।

फलस्वरूप शम्भाजी बड़ी निर्दयता के साथ कत्ल किये गये। उनके कत्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा। इधर मुगल-सेना दिनों-दिन विलासी बन रही थी। फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी।

सन् १७०६ में औरंगजेब ने देखा कि उनकी सेना अब अत्यन्त विशृंखलित और आलसी हो गयी है। राज्य की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जज़िया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है, तीन-तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है।

राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वे अब वृद्ध हो गये हैं। पहले-जैसी शक्ति अब उनके शरीर में नहीं रही। उनका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उनकी चिन्ताएँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर अहमदनगर लौट आये हैं।

इस समय वे अहमदनगर के किले में बीमार पड़े हुए हैं। उनका शरीर टूट चुका है। उन्हें ज्वर और खाँसी है। इस समय उनकी अवस्था ८९ वर्ष की है। एक साधारण-से पलंग पर लेटे हुए हैं। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हल्की पट्टियाँ हैं।

वे एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए हैं। दुबला-पतला शरीर, कटी-छटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वे सफेद लम्बा कुरता पहने हुए हैं, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तसबीह है।

आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उनके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उनकी पुत्री ज़ीनत-उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु ४० वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी शलवार और प्याजी रंग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमण्डल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रहे हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिनी ओर जीनत-उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द झोंका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे दिखाई पड़ रहे हैं।

आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख पड़फड़ा देता है। पलंग से कुछ हटकर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उनके समीप एक ऊँचे स्टैण्ड पर लम्बे मुंहवाली सोने की सुराही है, जिसमें गुलाबजल रखा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला रेशमी कपड़े से ढँका हुआ है।

परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खाँसते हैं, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखते हुए ज़ीनत से कहते हैं।

आलम : खाँसी एक लमहे के लिए नहीं रुकती·········कोई दवा उसे नहीं रोक सकती, जीनत ! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती ····यह मौत की आवाज है। इसे कौन रोक सकता है ? (फिर खाँसते हैं।) मौत की आवाज।

ज़ीनत : (धैर्य के स्वरों में) नहीं, जहाँपनाह ! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जाएगी। हकीमों ने·········

आलम : (बीच ही में) हकीमों ने·········हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज नहीं है, बेटी ! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज है, जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। (मुंह बिगाड़ कर) उखड़े। कहाँ तक रोकेंगे हम ? (खाँसते हैं।) कितने बलवाइयों को नेस्त-नाबूद किया, कितने गदर रोके, लेकिन····लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती, बेटी ! रुके भी कैसे ? (शिथिल स्वरों में) अब आलमगीर आलमगीर नहीं है।

ज़ीनत : नहीं, जहाँपनाह ! आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है। आपके तेवर देखकर अफ़गानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत, जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम : लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी-सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया। उसकी वजह से जिन्दगी भर परेशान रहा। लेकिन था बहादुर और दिलेर····खैर, 'काफ़िर बजहन्नुम रफ्त' (खाँसते हैं।) उसका बेटा शम्भाजी·········(रुक जाते हैं और गहरी साँस लेते हैं।)

ज़ीनत : छोड़िए इन बातों को, जहाँपनाह ! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग दोनों को खराब करनेवाली हैं। आप जैसे ही अच्छे होंगे····

आलम : (बीच ही में) अब अच्छे नहीं हो सकते, जीनत ! चन्द घड़ियों की जिन्दगी ! कौन जाने कब खामोशी आ जाये ! लेकिन, बेटी ! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया। (खाँसते हैं।) एक दिन भी नहीं। राजपूत-जैसी कौम पर हुकूमत करना जिन्दगी का आराम नहीं, सबसे बड़ी मेहनत है। मराठों की हिम्मत पस्त करना जिन्दगी का सबसे बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया, बेटी ! वह हमने किया। लेकिन अब····अब हम कमजोर हो गये हैं। अब कुछ नहीं कर सकेंगे। (ठण्डी साँस लेकर कलमा पढ़ते हैं।) ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह·········

ज़ीनत : आप सब कुछ कर सकेंगे, जहाँपनाह ! अच्छा, अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिए (दवा देने के लिए उठती है।) हकीम साहब दे गये हैं।

आलम : (तीव्र स्वर में) क्या हकीम साहब खुद नहीं आये ?

ज़ीनत : आये थे। बड़ी देर तक आपका इन्तजार करते रहे। आप होश में नहीं थे। वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गये हैं। उन्होंने अभी फिर आने को कहा है।

आलम : जो दवा दे गए हैं, वह उन्हें चखाई गयी थी ? (खाँसते हैं।)

ज़ीनत : जी, मैंने भी चखी थी। दवा में किसी तरह का शक नहीं है।

आलम : यह अहमदनगर है, बेटी ! शिया स्यासत बीजापुर और गोलकुण्डा

के करीब। दुश्मनी दोस्ती में छिपकर आती है। जिन्दगी में यह हमेशा याद रखो।

ज़ीनत : आपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने खुद चखकर देख ली है।

आलम : हमारे सामने नहीं चखी गयी, जीनत ! लेकिन खैर, कोई बात नहीं। दवा खाएँगे....लेकिन थोड़ा देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ ! क्या करें दवा खाकर (जोर से खाँसी आती है।)....अच्छा लाओ, खाएँ तुम्हारी दवा। आबेहयात से बढ़ कर....

[आलमगीर हाथ बढ़ाते हैं। ज़ीनत प्याले में दवा डाल कर देती है। आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखते हैं। सोचते हुए एक बार रुकते हैं फिर थोड़ी सी पीते हैं।]

आलम : (गला साफ कर) पी ली तुम्हारी दवा, बेटी ! इस दवा में जायके के साथ तुर्शी भी है। हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है।

ज़ीनत : लेकिन आपने सब तुर्शी जायके में तबदील कर ली है।

आलम : नहीं, जीनत ! मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया। हम कुरान पाक की कसम खाकर कहते हैं कि हम मराठों का नामोनिशान मिटाने में अपनी सारी सल्तनत की बाजी लगा देते, लेकिन ....लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमजोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया है। (ठहर कर) हमारे बहुत से काम अधूरे पड़े हैं। काश, हमारी जिन्दगी के दिन अभी खत्म न होते....!

ज़ीनत : (उत्साह से) अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलम-पनाह !

आलम : (विह्वल होकर) अह, फिर एक बार कहो जीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ....अगर हमारी जिन्दगी के दिन अभी खत्म न होते ! हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदानेजंग

में जाते, बागियों से कहते—कम्बख्तो ! आलमगीर कमजोर नहीं है। उसकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेक कर गुनाहों की माफी माँगो, नहीं तो काफिरो ! दोजख का रास्ता खून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोजख में दाखिल ····(आवेश में खाँसी, रुकने पर भारी साँस लेते हैं।) दोजख···· में दाखिल····हो····!

ज़ीनत : आप आराम करें, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबीयत और भी खराब हो जायगी।

आलम : इससे जियादह और क्या खराब होगी। जीनत ! जब हम मौत के दरवाजे पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं। चाहे जब खुल जाए। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सजा न दें। (खाँसी) जिन्दगी भर सजा ! सजा (रुकते हुए) अब्बाजान····को····भी····आँजहानी शाहेजहाँ को····(सोचते हैं।)

ज़ीनत : आलमपनाह ! तजकिरे न उठाएँ।

आलम : (भौंहों में बल देकर) क्यों न उठाएँ ? जिन्दगी भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तजकिरा भी न उठाएँ ? लेकिन, ज़ीनत ! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किये ? कुराने पाक की रूह से शरअ से········इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए— जिहाद के लिए, जो काम हमने किये, क्या उनका नाम गुनाह है ? काफिरों को जहन्नुम रसीद किया····क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़ने वाले दारा से सल्तनत छीनी····क्या यह गुनाह है ? नमूना-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझसे गुनाह हुए ? आलमगीर जिन्दा पीर········! लेकिन कोई आवाज कानों में कहती है कि आलम-गीर ! तूने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोखा दिया है।

तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा ! जीनत ! तू (तू पर जोर) बतला यह आवाज ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को गलत समझा ?

जीनत : (शान्ति से) आपसे कोई गलती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम : (शून्य में देखते हुए) हजारों सतनामियों को कत्ल किया........ दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक नहीं दिया और बाप को सात बरस तक.........लम्बे सात बरस तक.........

जीनत : लेकिन आलमपनाह ! अगर गौर से देखा जाए तो शहंशाह शाहेजहाँ को नजरबन्द करना गलत नहीं कहा जा सकता । अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मजार देखते ! क्या उन्हें तकलीफ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ से बचा लिया ।

आलम : लेकिन उस तकलीफ के पैदा करने का जिम्मा किसका है? हमारा । हमने ही लाहौर में दारा की कब्र बनवायी । हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेज कर अब्बाजान का महल कैदखाने में तब्दील कराया....! उस दास्तान को तुम जानती हो ?

जीनत : जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं ? आप आराम कीजिए । आपकी तबीयत ठीक नहीं है ।

आलम : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है । (शून्य में देखते हुए) आधी रात थी....कमरे में सिर्फ एक शमा जल रही थी.........दूसरी शमा शहंशाह शाहजहाँ की आँखों में झिलमिला रही थी । वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे । उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देने वाले ताजमहल पर जमी हुई थीं, हल्की चाँदनी थी । शहंशाह ने जहाँनारा से कहा— जहाँनारा ! आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो कैद नहीं करेगा....?

जीनत : (आग्रह के स्वरों में) जहाँपनाह.........

आलम : (उसी स्वप्न में) बादशाह की ज़बान तालू से सट गई थी.....
गला सूख रहा था। गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फ़रमाया—
मुमताज ! हमारी बेगम ! ताज हमें पत्थरों से नहीं; आँसुओं से बनवाना चाहिए था.....काश, यह मुमकिन हो सकता !

ज़ीनत : (सहानुभूति के साथ) उन्हें बहुत तकलीफ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक्त यह सोचना बेकार है। रात जियादह बीत रही है।

आलम : (चौंककर तसबीह फेरते हुए) क्या कहा ? रात जियादह बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है। लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है। (ठहर कर) हम इस लायक हैं भी नहीं, जीनत ! जिन्दगी में हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ लड़ाइयां ही लड़ी हैं। उन्हीं में हमने फतह हासिल की है, लेकिन आज.....आज जिन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली.....भारी शिकस्त। हमने अब्बाजान को कैद नहीं किया, इस आखिरी वक्त में अपने चैनो-सुकून को ही कैद किया। आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानों में आ रही है.....प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज में कितनी दर्द है.........तुम सुन रही हो.........? नहीं ? उनकी हसरत-भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है।

ज़ीनत : (अत्यन्त सान्त्वना के स्वरों में) जहाँपनाह ! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ उ। भूल.........

आलम : (बीच ही में) नहीं भूल सकते, जीनत ! हमने अपनी रूह नींव में दफ़न कर सल्तनत की इमारत खड़ी की है। आज रूह तड़फ कर करवट लेना चाहती है। वह चीख रही है। तुम उसकी आवाज भी नहीं सुनना चाहती ?

ज़ीनत : जहाँपनाह ! खुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से जियादह बीत चुकी है।

आलम : जिन्दगी उससे जियादह बीत चुकी है। (नेपथ्य की ओर उँगली उठाकर) देखती हो यह अँधेरा ? कितना डरावना ! कितना खौफनाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी जिन्दगी हो ! इसमें कभी सुबह नहीं होगी, जीनत ! अगर होगी भी तो वह इसके काले समन्दर में डूब जाएगी। इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जाएगा। (रुककर) ओह.... कितना अँधेरा है ! खुदा, हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर....कुरान की कसम खाकर मुराद....भाई मुराद से सुलह की और फिर........और फिर उसका खून........(खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाते हैं)

ज़ीनत : (घबराहट के स्वर में) जहाँपनाह........ ! जहाँपनाह ! (फिर पुकार कर) करीम ! करीम !!

[करीम सिपाही का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है।]

ज़ीनत : (आदेश के स्वर में) हकीम साहब को फौरन यहाँ आने की इत्तिला करो। बादशाह सलामत की तबीयत खराब होती जा रही है। फौरन जाओ। हकीम साहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फौरन....

करीम : जो हुक्म। (अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान।)

[ज़ीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से हवा करती है। आलमगीर होश में आते हैं। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलकर ज़ीनत को घूर कर देखते हैं।]

आलम : (काँपते हुए स्वरों में) कौन....? अब्बाजान ! (आँखें फाड़कर) तुम ?........तुम जीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गये ? अभी तो यहाँ

आये थे। (सोचते हुए) जर्द था उनका चेहरा.........आँखों में आँसू थे। (ठण्डी साँस लेकर) इतने बड़े शहंशाह की आँखों में आँसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा—शहंशाहे आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगजेब वापस कर दो.........! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है.....उसे हमें वापस कर दो.........! (कुछ ठहर कर) लेकिन, जीनत ! वह, बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को कैद किया है। (इसी समय कमरे में टँगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंक कर देखते हैं।).........और यह परिन्दा अपने पर फैलाकर हमसे कुछ कह रहा है.........क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजरे में क़ैद किया है ! (ज़ीनत की ओर आग्रह से) जीनत ! इस पिंजरे का दरवाजा खोल दो। (ज़ीनत पिंजरे का दरवाजा खोलती है।) उसे निकालो (ज़ीनत परिन्दा पकड़कर निकालती है।) उड़ा दो उसे (ज़ीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देखकर सन्तोष की गहरी साँस लेते हैं।) आ.....जा..... ! (कुछ रुककर) हम अब्बाजान को इस तरह आजाद नहीं कर सके ! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की क़िस्मत भी नसीब नहीं हुई !

ज़ीनत : लेकिन, आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनियाँ की कैद से निकल कर आजाद हो गए। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबीयत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम : (ज़ीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं।) परिन्दे की किस्मत.....बादशाह की किस्मत नहीं हो सकी.....! इस अँधेरे में उस परिन्दे की किस्मत जागी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था। (रुककर)

कुछ वैसी ही आवाज आ रही है। (सुनते हुए) वह देखो। यह आ रही है (रुककर) लेकिन यह आवाज कैसी है। इस खौफनाक अँधेरे में यह आवाज जैसे मुँह फाड़कर खाने दौड़ रही है ! यह आयी ! जीनत ! आवाज सुनती हो !

ज़ीनत : (आश्चर्य से) कैसी आवाज ? कौन-सी आवाज ? जहाँपनाह !

आलम : (आँखें फाड़ कर) अरे, इतने जोर से आवाज आ रही है और तुम्हें सुनायी नहीं पड़ती ? यह देखो। (सुनते हुए) फिर आयी। यह हर लमहे तेज होती जा रही है। जीनत ! (पुकार कर) जीनत ! यह आवाज़ ! (चीख़कर) यह खौफनाक....आवाज़।

ज़ीनत : (धैर्य के स्वरों में) कोई आवाज़ नहीं है, जहाँपनाह ! आपकी तबीयत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा खयाल पैदा हो रहा है। (विश्वासपूर्वक) कहीं कोई आवाज नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें।

आलम : (घबराहट से कुछ उठकर) नहीं, नहीं, यह आवाज बराबर आ रही है। कोई चीख रहा है ! (संकेत कर) यह देखो, अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है ? (जोर से) कौन ? (पुकार कर) सिपहसालार ?

ज़ीनत : (समीप होकर) कोई नहीं है, जहाँपनाह ! सिपहसालार की जरूरत नहीं है।

आलम : (घबराहट से भर्राए हुए स्वर में) यह खिड़की के पास कौन है ! (संकेत करते हुए) कराहता हुआ, चीखता हुआ। ओह उसने फिर चीख भरी; अरे दारा....! (काँपते हुए) दारा ! तुम हो ! हमने तुम्हारा खून नहीं किया ! हमने नहीं किया, दारा ! हुसेनखाँ जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस आया। हमने उसे हुक्म नहीं दिया था। और.......और (काँपकर) तुम्हारा सर कहाँ है दारा ? तुम्हारा सर किधर गया ? (आलमगीर उठकर खड़ा होता है। फिर लड़खड़ाते हुए) हम खोज कर लायेंगे। हम अभी

खोज कर लायेंगे। (हाथ फैलाते हुए) तुम्हारा इतना खूबसूरत सर.....!

[ज़ीनत उन्हें रोककर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाता है।]

ज़ीनत : (अपने आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछते हुए) जहाँपनाह.........

[करीम का प्रवेश]

करीम : (अदब से सलाम करके) शाहज़ादी! हकीम साहब तशरीफ लाये हैं।

ज़ीनत : (शीघ्रता से) फौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक्त।

करीम : (सलाम कर) जो हुक्म (शीघ्रता से प्रस्थान)

ज़ीनत : (कम्पित स्वर में आँखों में आँसू भरकर) क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा! या खुदा। (आलमगीर को चादर उढ़ाती है।)

[हकीम साहब का प्रवेश! लम्बी दाढ़ी, काला चोगा, सिर पर अमामा, सफेद पैजामा और ज़री के जूते। साथ में दवाओं का एक सन्दूकचा।]

हकीम : (बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद ज़ीनत को सलाम करता है।) आदाब!

ज़ीनत : (कम्पित स्वर में) आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब! (उठकर हकीम साहब के पास आती है।) आज रात आलमपनाह की तबीयत बहुत ही खराब रही। जाने उन्हें क्या हो गया है! जागते हुए ख्वाब देखते हैं और चीख उठते हैं। एक लमहा उन्हें चैन नहीं है। (करुण स्वर में) अब आप ही मेरे नाखुदा हैं! तबीयत घबराती है। जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्द अच्छा कर दीजिए।

हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है ! (गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में) घबराइए नहीं, घबराइए नहीं शाहजादी ! खुदा पर भरोसा रखिए ! इंशाअल्लाह, बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे । देखिये, मैं दवा देता हूँ । बादशाह सलामत अभी होश में आये जाते हैं । घबराने की कोई बात नहीं ।

ज़ीनत : (विकृत स्वर में) मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ ।

हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें ।

[हकीम अपने सन्दूकचे में से एक डिबिया निकालता है । ज़ीनत पंखा झलती है ।]

हकीम : (डिबिया का ढक्कन खोलते हुए) अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है ?

ज़ीनत : खाँसी में बहुत आराम है । पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे । आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गयी, लेकिन घबराहट बहुत ज़ियादह बढ़ गयी है । (पंखा झलती है ।)

हकीम : घबराहट भी दूर हो जायगी (आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाता है ।) अभी जहाँपनाह को होश आता है । आप सब्र करें ।

ज़ीनत : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गयी थी । मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रक्खा । अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन ?

हकीम : जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फर्ज है ।

ज़ीनत : इसीलिए तो मैंने आपके पास फौरन खबर भेजी ।

हकीम : मैं खबर पाते ही हाजिर हुआ । (आलमगीर पर गहरी नज़र डाल कर) देखिए, देखिए ! बादशाह सलामत को होश आ रहा है । पंखा जरा धीमा करें ।

[आलमगीर के ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। फिर हलकी अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं। ज़ीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक।]

ज़ीनत : (उत्साह से) होश आ गया ! होश आ गया !!

हकीम : बादशाह सलामत को आदाब अर्ज करता हूँ। (दरबारी ढंग से सलाम करता है।)

आलम : (धीमे स्वर में) पा.....नी.....।

[ज़ीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाब जल निकाल कर आगे बढ़ाती है।]

ज़ीनत : जहाँपनाह, यह पानी.........

[आलमगीर उठने की कोशिश करता है। हकीम उन्हें उठने में सहारा देता है। आलमगीर पानी पीने के लिए झुकते हैं। लेकिन दूसरे क्षण रुक जाते हैं।]

आलम : (प्रश्नसूचक स्वर) यह कौन-सा पानी है ?

ज़ीनत : (नम्रता से) वह गुलाबजल है जो आपके लिए खास तौर से तैयार किया गया है।

आलम : (सन्तोष से) लाओ (एक घूँट पीकर—घबरा कर) हमारी तसबीह कहाँ है ?

ज़ीनत : (पलंग से तसबीह उठाकर) यह है, जहाँपनाह !

आलम : (लेते हुए) हमेशा मेरी जिन्दगी के साथ रहनेवाली.........! (फिर एक घूँट पानी पीकर हकीम साहब को घूरते हुए) तुम कौन.........हो (एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए) शायद हकीम.........साहब.........?

हकीम : (सलाम करते हुए) जी, जहाँपनाह !

आलम : (कातर स्वर में) हमारी हालत बहुत खराब है हकीम साहब ! अब शायद हम न बचेंगे। (ठण्डी साँस लेते हैं।)

हकीम : ऐसी बात न फरमाएँ जहाँपनाह ! बुखार आपका अब दूर हो ही गया, सिर्फ कमजोरी और खाँसी है। खाँसी भी अब अच्छी हो चली है, और कमजोरी भी इंशाअल्लाह दूर हो जायगी।

आलम : तो जिन्दगी भी दूर हो जायगी, हकीम साहब ! इस वक्त हमारे लिए कमजोरी और जिन्दगी दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जायगी। और आलमगीर कमजोर होकर जिन्दा नहीं रहेंगे।

हकीम : (अदब से) आलमपनाह ! आप बजा फ़रमाते हैं। (हकीम यह बात आदत से कह देता है लेकिन अपनी गलती महसूस करने पर घबराहट से) लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, आलमपनाह ! (यह सोचकर कि उसे यह भी नहीं कहना चाहिए वह और घबरा कर कहता है।)....मैं क्या करूँ....कुछ जवाब नहीं दे सकता। (हाथ मलते हुए सर झुका लेता है।)

आलम : (गम्भीरता से) जीनत, हकीम साहब से कहो कि वे हमें बेहोशी की दवा दें।

ज़ीनत : (बात बदलने के विचार से) इन्हीं की दवा से तो आप होश में आए हैं, जहाँपनाह !

आलम : (गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में) लेकिन जीनत, इस होश से हमारी बेहोशी अच्छी है। गुनाहों की याद अब बरदाश्त........ (रुककर, चौंककर, अपनी बात पलटते हुए) हकीम साहब, कम-जोरी की हालत अब बर्दाश्त नहीं होती। ऐसी दवा दीजिए कि बेहोशी का आलम रहे। (रुककर) आपके पास—शराब को छोड़कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : जहाँपनाह ! आपकी कमजोरी बहुत जल्द रफा हो जायगी।

आलम : (तीव्रता से) हमारे सवाल का जवाब दीजिए हकीम साहब ! आपके पास शराब को छोड़कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : (घबरा कर हकलाते हुए) जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं आलम-

पनाह ! लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूँ ? ये दवाएँ आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम : (आँखें फाड़कर) आलमपनाह के लिए नहीं हैं ? कौनसी दौलत है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सबसे बड़ी दौलत है । हकीम साहब ! हम इस वक्त वही चाहते हैं ।

ज़ीनत : (भृकुटि-संचालन के साथ) हकीम साहब, आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिससे थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमजोरी दूर होकर तबीयत में ताजगी आती है ! (घूरकर देखती है ।)

हकीम : (सँभल कर) हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है । मेरे वालिद साहब ने मुझे वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएँ बेकार साबित हों तब उसका इस्तेमाल किया जाय (हिचकते हुए) मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था ।

ज़ीनत : (आलमगीर से) और जहाँपनाह, इस वक्त वह दवा न खाई जाय तो बेहतर होगा । सुबह होने में जियादह देर नहीं है । और अजान का वक्त करीब आ रहा है ! आप खुदा की इबादत न कर सकेंगे । अभी वह दवा रहने दें ।

आलम : यह बात ठीक कह रही हो बेटी ! अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिए, हकीम साहब ! आप अजान होने के वक्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं ।

हकीम : बसरोचश्म । (शाहजादी से) शाहजादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फरमायें, मैं कमजोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ ।

ज़ीनत : (प्याला उठाकर) यह लीजिए ।

हकीम : (अपने संदूकचे में से एक दवा निकालते हुए) खुदा चाहेगा तो आपको फौरन आराम होगा । सितारों की नहूसत रफा होगी । (प्याले में दवा डालते हुए) आलमपनाह ! हमीदुद्दीनखाँ ने तो

सितारों की नहूसत दूर करने के लिए ४,००० का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक कर दिया होगा ?

आलम : (गम्भीर स्वर में) नहीं। जुमेरात को हमीदुद्दीनखाँ ने नुजूमियों के कहने के मुताबिक तसद्दुक करने के बारे में एक दरख्वास्त जरूर पेश की थी, लेकिन हमने उस दरख्वास्त में यह बढ़ा दिया कि यह तो अंजुमपरस्तों का रिवाज है। इसके बजाय ४,००० रुपया काजी को गुरबा में तक़सीम करने के लिए दे दिया जाय।

हकीम : (उत्साह से आँख चमकाकर) आलमपनाह ने क्या बात कही है ! अब तो सितारों की नहूसत दूर होने में कोई अंदेशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यकीन है कि यह अरक आपको ऐसी ताकत देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दो-ग़म को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे।

आलम : (सोचते हुए) सौ साल तक ! यानी ग्यारह बरस और ! लेकिन हकीम साहब, हम ग्यारह दिन भी जिन्दा नहीं रहेंगे। बेटों को भी बादशाहत करने का मौका मिले। हमारे (सोचता हुआ) मुअज्जम''''आज़म''''कामबख्श'''' ।

हकीम : (दवा का प्याला सामने करते हुए) यह सही है, आलमपनाह ! लेकिन हमें भी अपनी खिदमत करने का मौका दें। मैंने अपनी हिकमत की बेहतरीन दवा आलमपनाह के रूबरू पेश की है।

आलम : (ज़ीनत से) अच्छा, ज़ीनत ! यह दवा रख लो। इसे हम नमाज़ के बाद पियेंगे। अब आप तशरीफ ले जा सकते हैं। (ज़ीनत दवा का प्याला ले लेती है।)

हकीम : (सिर झुकाकर) जो जहाँपनाह का हुक्म। लेकिन एक गुज़ारिश है।

आलम : क्या ?

हकीम : (हाथ जोड़कर) आलमपनाह कुछ न सोचें, कोई गुफ्तगू न करें।

इस वक्त आराम करना खुद एक मुफीद दवा होगी। सुबह होते ही आलमपनाह की तबीयत अच्छी मालूम होगी।

आलम : अच्छी बात है, हम कुछ न सोचेंगे। कुछ गुफ्तगू न करेंगे। लेकिन हम अपने बेटे को खत तो लिखवा ही सकते हैं ?.... (सोचकर) वही करेंगे। हकीम साहब ! अब आप तशरीफ ले जाइये। हमें अपने बेटों की याद आ रही है।

हकीम : जो हुक्म। (बादशाही अदब के अनुसार सलाम करके प्रस्थान)

आलम : (सोचते हुए) हकीम साहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचें। कोई गुफ्तगू न करें, सुबह होते ही तबीयत अच्छी मालूम होगी।........ लेकिन ज़ीनत हम जानते हैं कि हमारी तबीयत अच्छी नहीं होगी। हमने अपनी किश्ती समन्दर में छोड़ दी है। अब साहिल दूर होता जा रहा है।

ज़ीनत : तबीयत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फ़रमा रहे हैं। अब आपकी तबीयत अच्छी होने जा रही है। हकीम साहब की दवा बहुत मुफ़ीद साबित हुई है। देखिए आपकी खाँसी को कितना फ़ायदा पहुँचा है।

आलम : (ज़ोर देकर) तुम नहीं समझीं, ज़ीनत ! जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और खामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी शिकायतों का शोर खामोश हो गया है। अब हमारा आखिरी वक्त करीब है।

ज़ीनत : (आँखों में आँसू भरकर) ऐसा न कहें, आलमपनाह !

आलम : (गहरी साँस लेकर) और ज़ीनत, हमारी बेटी ! आज इस आखिरी वक्त में हमारे बिस्तर के नजदीक हमारा एक भी बेटा नहीं है। ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में खलल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सजा देकर हमेशा कैद-खाने में रक्खा ? अपने नजदीक आने भी नहीं दिया ? (सोचते

हुए) हमारे कैदी बच्चो, तुम बदकिस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने और कोई गुनाह नहीं किया। तुम लोगों का सिर्फ यही गुनाह है कि तुम औरंगजेब के बेटे हो! आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाजे पर पहुँच कर तुम्हारी याद कर रहा है!""मुअज्जम""आजम""कामबख्श""!

जीनत : (आग्रह से) जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बत भरे अल्फ़ाज जरूर पहुँचा दूँगी!

आलम : (सन्तोष से) हम अपनी कब्र से भी तुम्हें दुआ देंगे बेटी! हम खुद अपने बच्चों को खत लिखना चाहते हैं। इस आखिरी वक्त में हमारी ख्वाहिश पूरी होने दो। कातिब को बुलाओ। (ठंडी साँस लेता है।)

जीनत : आपका हुक्म पूरा होगा अब्बाजान! (पुकार कर) करीम (करीम का प्रवेश। वह सलाम करता है।)

जीनत : शाही कातिब को इसी वक्त हाजिर किया जाय।

करीम : जो हुक्म। (सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान)

आलम : (मन्द स्वर में) हम खुश हुए, बेटी! हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ रहें। आज तक हमने शायद किसी की ख्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक नहीं कि किसी से भी अपनी ख्वाहिश पूरी करने के लिए कहें। लेकिन तुमने हमारी ख्वाहिश पूरी की। बहुत दिनों तक जियो।

जीनत : जहाँपनाह! शाहजादी जहाँनारा ने अब्बाजान की कैद में सात साल तक खिदमत की थी, क्या मैं आपकी खिदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ?

आलम : हमें भी कैद में समझो, बेटी! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ से घेर रक्खा है। जमीर की जंजीरों ने भी हमारे हाथ-पैर बाँध लिये हैं। हम अब इस दुनिया को आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। जिस सल्तनत को खून से सींच-सींच कर हमने इतना

वड़ा किया है उसे अगर अब आँसुओं से भी सींचना चाहें तो हमें एक पूरी जिन्दगी चाहिए। वह हमारे पास कहाँ है ? (गला सूख जाता है। ठहर कर) बेटी, पानी, पानी.........गला सूख रहा है। (ज़ीनत प्याले में गुलाबजल लेकर पिलाती हैं।)

ज़ीनत : आप थक गये हैं, जहाँपनाह ! सारी रात आपको बहुत बेचैनी रही।

आलम : उस बेचैनी के खत्म होने का वक्त भी आ रहा है। (खिड़की की ओर संकेत करते हुए) देखो ये तारे ढल रहे हैं। रात भर इन्होंने रोशनी दी और अब वे अपनी आखिरी घड़ियाँ गिन रहे हैं। हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्र भर अँधेरा ही फैलाया। उजाले की कोई किरन नहीं रही। हम मौत का ही उजाला दे सकें तो अपने को खुश किस्मत समझेंगे। (स्तब्धता। एकबारगी चौंक कर) सुवह हो गई क्या ? (खिड़की की ओर देखता है।)

ज़ीनत : (उसी ओर देखती हुई) हाँ, जहाँपनाह, आसमान पर सफेदी छाने लगी है !

आलम : (गहरी साँस लेकर) खुदा की इबादत का वक्त आ रहा है। (तसबीह फेरते हैं।) ज़ीनत, हमने जिन्दगी भर इबादत का ढिंढोरा पीटा, लेकिन खुदा के पास तक नहीं पहुँच सके। अगर पहुँच पाते तो चलते वक्त इतने गुनाहों का बोझ हमारे सर पर न होता। चलने का वक्त करीब आ रहा है। मुझे खुशी है कि आज जुमा है। हमने जिन्दगी भर इबादत कर यही चाहा कि जुमा हमारा आखिरी दिन हो। (अस्थिर होकर) कातिब अभी नहीं आया ?

ज़ीनत : आ रहा होगा, जहाँपनाह ! करीमबख्श फौरन ही उसे लेकर हाजिर होगा।

आलम : (ठण्डी साँस लेकर) ज़ीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे चारों तरफ हजारों लोग थे लेकिन.........लेकिन इस वक्त हम अकेले

जा रहे हैं। हम इस दुनिया में आये ही क्यों, हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी। हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह को सर पर लिये जा रहे हैं।

ज़ीनत : आलमपनाह ! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है, और····

आलम : (बीच ही में रोककर) इस आखिरी वक्त में ऐसी बात मत कहो ज़ीनत। ये बातें बहुत बार सुनी है। लेकिन अब इन बातों से रूह काँपती है, दिल डूबता है। काश, ये बातें सच होतीं। (गहरी साँस लेता है।)

ज़ीनत : नहीं आलमपनाह ! खानदाने तैमूरी में आपसे बढ़कर अद्‌ल करने वाला कोई नहीं हुआ।

आलम : और उस अद्‌ल में हमने अपनी मुराद पूरी की !····मुराद (मुराद शब्द से मुरादबख्श का स्मरण आने पर) और हमारे मुरादबख्श ने सामूगढ़ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा लिया। कितनी हैरत-अंगेज थी वह ? (सोचते हुए) राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय हाथी के जमींदोज हो जाते, लेकिन मुरादबख्श········मुरादबख्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक; राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केसरिया बाना खून से लथपथ होकर जमीन पर फैल गया, और ! इस सबका बदला मुरादबख्श को क्या मिला ! ओह····पा····नी····।

(ज़ीनत फिर पानी पिलाती है।)

ज़ीनत : हुजूरेआली ! आपसे दस्तबस्ता अर्ज है कि आप अब कुछ न फर-मायें। ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और खराब कर लेते हैं।

आलम : (उतावली से) इस वक्त हमें मत रोको, जीनत-उन्निसा ! हमें मत रोको। हम कहेंगे, जरूर कहेंगे। बुझने के पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताजी हो रही है।

एक-एक तस्वीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर बैठ कर सैरगाह जा रहे हैं। आगे-पीछे हिन्दुओं का बेशुमार मजमा है। वे चीख-चीख कर कह रहे हैं कि आलमपनाह, जज़िया माफ़ कर दीजिए। लेकिन हम माफ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का खर्च कहाँ से आयेगा? हम कहते हैं....तुम काफ़िर हो! जज़िया नहीं हटेगा। वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है। हम गुस्से में आकर पीलवान को हुक्म देते हैं। इन कम्बख्तों पर हाथी चला दो। हाथी आगे बढ़ता है और सैकड़ों चीखें हमारे कान में पड़ती हैं।....हम हँस कर कहते हैं,—काफ़िरो, तुम्हारी यही सजा है। जज़िया माफ नहीं हो सकता....नहीं हो सकता!

ज़ीनत : (आँखों में आँसू भरकर) आलमपनाह!

आलम : (उसी स्वर में) आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है। ज़ीनत, हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है....इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है?

ज़ीनत : (कातर स्वर में) आलमपनाह, आप यह दवा पी लीजिए। इस दवा से आपको बहुत फायदा होगा। (दवा का प्याला आगे बढ़ाती है।)

आलम : (भारी साँस लेकर) जिसने सारी जिन्दगी खून का जाम पिया है, उसे दवा का जाम क्या फ़ायदा करेगा? इसे फेंक दो ज़ीनत, उस खिड़की की राह फेंक दो।

ज़ीनत : आलमपनाह! यह दवा....(हिचकती है।)

आलम : (तीव्र स्वर में) ज़ीनत! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अब भी तेज है। फेंको यह दवा।

(ज़ीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है।)

आलम : (संतोष से) हम खुश हुए (ठहर कर) सोचो, जो दवा हकीम

ने नहीं चखी, वह दवा हमारे काम की नहीं है। अहमदनगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है।

ज़ीनत : तो जहाँपनाह ! वह दवा मैं चख लेती।

आलम : ज़ीनत, जिन्दगी भर हमने अपने ही मकान में आग लगाई है। मरते वक्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते....? क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे ? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है ज़ीनत ! दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो....हमारे लिए दुआ करो....!

ज़ीनत : (हाथ बाँधकर ऊपर देखती हुई) जहाँपनाह सलामत रहें........ जहाँपनाह सलामत रहें....जहाँपनाह....आ....मी....न.... (आँखें बन्द कर लेती है।)

[करीम का प्रवेश]

करीम : (सलाम करके) शाहजादी, कातिब हाजिर है।

आलम : (चौंककर खुशी के स्वर में) क्या कातिब आ गया ? आ गया ? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाज़िर करो। हमारे पास ज़ियादह वक्त नहीं है।

करीम : (सलाम करके) जो हुक्म। (शीघ्रता से प्रस्थान)।

आलम : (संतोष की साँस लेकर) कातिब आ गया, बेटी ! काश यह हमारी सारी जिन्दगी की दास्तान बड़े हरफों में दर्ज करता ! हमारे बेटों के लिए यह बहुत बड़ी नसीहत होती। आलमगीर के आखिरी वक्त में सच्ची जिन्दगी पैदा होती। (तसबीह फेरकर कलमा पढ़ता है।) ला इलाह इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह।

ज़ीनत : (आँखों में आँसू भरकर) अब्बाजान ! (उसका गला रुँध जाता है।)

आलम : रोओ मत बेटी ! हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो। आखिरी वक्त में अपनी बेटी की आवाज से हमारी कब्र में फूल बिछ

जाएँगे, उसके आँसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जाएँगे। हमारी बेटी ज़ीनत! (उसका हाथ अपने हाथ में लेता है।)

(कातिब का प्रवेश। ढीला ढाला झबा (चोगा), कमर में कमर-बंद, सिर पर साफा, सफेद पैजामा, कामदार जूता। वह आकर शाही सलाम करता है।)

आलम : (शीघ्रता से) कातिव, तुम आ गये। हम अपने बेटों को ख़त लिखाना चाहते हैं। जल्द लिखो। हमारे पास वक्त बहुत थोड़ा है। लिखना शुरू करो। (आलमगीर आँखें बन्द कर लेते हैं।)

कातिब : (सिर झुका कर) जो इरशाद!

(कातिब बैठकर लिखने की मुद्रा धारण करता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलता है। कातिब लिखता जा रहा है।)

आलम : (धीरे-धीरे) सलाम अलेकुम....आलम, हमारे बेटे, हम जा रहे हैं! हम जिन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाये, लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिये जा रहे हैं! तुम उखूव्वत, अम्न व एतेमाद पर ख्याल रखना....। यह सारी दुनियाँ हेच है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा........जिस्म से गरमी निकल गई है, अब कोयलों का ढेर बाकी है....! हाथ-पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है....खुदा से दूर हूँ....और दिल में कोई सुकून नहीं है....हमारे लिए कौन-सी सजा होगी....यह सोचा भी नहीं जा सकता।.... खुदा की रहमत पर हमारा पूरा यकीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जायें? अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डाल दी है....खुदा....हाफिज....।

ज़ीनत : (आँखों में आँसू भरे हुए) अब्बाजान!

आलम : (आँख बन्द किए हुए) कामबख्श, हमारे बेटे····

ज़ीनत : (कातिब की ओर इशारा करके) लिखो। (कातिब लिखता है।)

आलम : हम अकेले जा रहे हैं। तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है····। लेकिन इससे क्या फ़ायदा····? जो सजायें हमने दी हैं····जो गुनाह हमने किये हैं····जो बेइंसाफ़ियाँ हमने की हैं····उन सबका अज़ाब हम अपने आग़ोश में लिये हैं········हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते हैं। अपनी माँ उदयपुरी को तकलीफ मत देना····? मैं रुखसत होता हूँ····अलविदा····!

(थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है।)

ज़ीनत : (करुण स्वर में) अब्बाजान, आप ऐसा खत क्यों लिखा रहे हैं ?

आलम : (ज़ीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर) ज़ीनत, मेरी बेटी ! इस जिन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा········? इस खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जेबाइश की जरूरत नहीं········इस बदनसीब को जमीन में यों ही दफन कर देना········ इस मुश्तेख़ाक को पहली ही मंजिल पर सुपुर्द-खाक कर दिया जाये········हमें खुशी होगी अगर हमारी कब्र पर कुदरती सब्ज मखमल की चादर बिछी होगी········(कुछ देर ठहर कर) आँ जहानी, हमारे गुनाहों को बख्श दीजिए····? दारा····! शुजा····! मुराद····!

(इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अजान होती है। आलमगीर ध्यान से सुनते हैं। उनके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठाकर अजान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखते हैं।)

आलम : (तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखकर रुकते किन्तु स्पष्ट स्वरों में।)
अल्ला····हो····अक····

('अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओठों ही में रह जाता है और तकिए पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है।)

ज़ीनत। (शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुँधे हुए कण्ठ से) आलमपनाह.....अब्बा.....जान.....!

(कोई जवाब नहीं मिलता। बाहर अजान होती रहती है। ज़ीनत अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई आलमगीर का मुंह सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है। कातिब घुटने टेककर दोनों हथेलियाँ जोड़कर मन-ही-मन कुछ पढ़ने लगता है।)

[परदा गिरता है।]

ऊसर

●

भुवनेश्वर

[१९१०–१९५५ ई०]

पात्र

लड़का, गृहस्वामी, ट्यूटर, युवक, मोटी रमणी, गृहस्वामिनी, लड़कियाँ।

पहला दृश्य

एक मध्य वर्ग बंगले का ड्राइंग-रूमी कमरा, छोटा और नीचा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तस्वीरें आज ही टाँगी हैं, जो कीलें गाड़ने के ताजे निशानों से मालूम होता है। दो दरवाजों और तीन खिड़कियों पर पर्दे हैं, वो रोज ही पड़े रहते हैं, आज सिर्फ खिड़कियों पर पर्दों की कोरें तुरप दी गयी हैं। भीतर के दरवाजों पर जाली का पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत-सी तस्वीरें, घोंघे और शंख रखे हैं। एक प्लास्टर ऑफ पेरिस का गांधी का बस्ट भी है। फर्नीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा और अक्सर बेमेल है—गहरी नीली सुईट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली उडवर्क का भी सुईट है, जिस पर रेशम की एक बड़ी बत्तख कढ़ी हुई है, काली बेंच पड़ी है—कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं, जो नंगी और भीतर के दरवाजे के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाये कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताजा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखलायी देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज़ दहलीज पर सर रखे सो रहा है और एक किर्मिच की कुर्सी पर एक युवक हाथों को जंगलों में भींचे टाँगें हिलाता हुआ—पोर्च में खड़ी बड़ी गीली कार की तरफ़ बड़ी देर से—करीब-करीब जबसे वह लाल सुर्खी को दलती हुई और अपने बेलून टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आयी है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर से एक आठ वर्ष का लड़का त्योहारी कपड़ा पहने हुए एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और

युवक दोनों चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्रा कर फिर सिर टिका देता है। युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नजर हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है। उसका एक पैर का होज़ नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद बरौठी पिंडली दिखायी दे रही है।

लड़का : (कुत्ते को जूते से सहलाते और अँगुली चटाते) मेरा पिप्पा ! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम यहाँ अकेले पड़े हो, मेरा बू-बी (वहीं बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख बन्द किये कान और दुम हिलाता है) तुम मैले हो·····देखो, चुपके से जब सब सो जायँ, तब तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम तुम तो भाई-भाई हैं·····हम तुम····· ह·····म (कुत्ते को उठाता-सा है।)

[भीतर के दरवाजे से कुर्सियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृहस्वामी का हठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है। पर उसका कर्रा इस्तरी किया हुआ सूट और खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एक बारगी छोड़कर कमरे में आ जाता है। पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टाँगों से चिपट कर खेलने लगता है।]

गृहस्वामी : (दियासलाई से दाँत खोदते हुए.—यह क्या बदतमीजी है। भीतर मेहमान आये हैं। तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। (कुर्सियाँ देखते हुए) और यह सब कुर्सियाँ क्यो बरबाद कर दीं।

लड़का : (चट से) कुर्सियाँ ? कहाँ ? ये तो आपने हटाई हैं।

गृहस्वामी : (खिड़की से बाहर थूककर) और अंग्रेजी तो आप सब भूल गये, अब कभी मेहमान आयें, तो अपने ट्यूटर के साथ·····

[थूकता है। लड़का बाहर की ओर युवक की ओर देखता है और युवक जो गृहस्वामी के आते ही उठकर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया है, भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ता है।]

गृहस्वामी : (युवक से) तुम वहाँ गये थे ? मैं कहता हूँ, जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे, तो शाम को साइकिलबाजी न किया कीजिए। (थूकता है) भाई जान, इसमें आपही का फायदा है····

युवक : (चुप है····जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।)

गृहस्वामी : और तुम भीतर आ सकते थे····(सहसा) और तुमने चाय नहीं पी····?

युवक : जी नहीं····

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से संतुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ से फिर कर एक कुर्सी पर बैठ गया। फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने संतोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसक कर लड़के के पास आना चाहता है, लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है।]

ट्यूटर : अब तो मिसेज सिबेल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी : (जैसे उसने मिसेज सिबेल का अपमान किया हो) क्या अच्छी हैं ? जरा-सी पार्टी पर आप देखिए, हफ्ते भर स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगों को घूम-घूम कर मकान और बाग दिखाया जा रहा है····फिर हम लोगों की····

ट्यूटर : मैं आज आपसे सुबह कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिजी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे····?

गृहस्वामी : (एकटक उसकी तरफ देखता है, जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है।)

ट्यूटर : मैं सोचता हूँ कि यह इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरिमेन्टर का जीवन जो मैं····

[कुत्ता चीख पड़ता है, शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।]

गृहस्वामी : देखो जी····

[लड़का कुत्ते को बगल में दबाकर भीतर भाग जाता है ।]

गृहस्वामी : (टच्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मैं इस भीड़-भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते, जब बाहर के आदमी होंगे, तो वे बिलकुल दूसरी ही हो जायँगी और अपने पति से भी वही उम्मीद करेंगी । मैंने आपके टेबुल पर फिगर बोल, मैंने सुनी भी न थी, पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फिगर बोल बरतते हैं···· हुँह····
(टच्यूटर के हंसने का इन्तजार करता है)
और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टाँग दिया तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा, जैसे वह कोई क्यूबिज्म की डिजाइन हो ।

टच्यूटर : (गम्भीरता से) अब तो मिसेज सिवेल अच्छी हैं पहले से ।

गृहस्वामी : अच्छी क्या हैं (रुककर) उम्र का तकाजा है । अब देखो बाईस साल कीं मैरेड लाइफ में—(रुक जाता है, जैसे टच्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं ।)

टच्यूटर : (नीचे नजर, हाथ से हाथ दबाये) मैं आपसे कुछ कहना चाहता था····मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गये····

गृहस्वामी : (बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ, यह आपकी मेहरबानी है । पर मैं मजबूर हूँ । आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च—कतई मजबूर हूँ । यह मदरासी मेम २५ पर तैयार की थी, मुझे कहना न चाहिए । मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज से, समझे, यह इन्तजाम किया था ।

टच्यूटर : मुझे अफसोस है ।

गृहस्वामी : (कुछ समझ नहीं पाता) वो तुम बाइसिकिल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

टच्यूटर : मैं साइकिल पर कहीं नहीं गया....मैं गया ही नहीं (एकबारगी रुक जाता है ।)

[सन्नाटा हो जाता है । पर यह साफ है कि किसी का बोलना जरूरी है ।]

गृहस्वामी : (टाँगें हिलाते हुए) मेरा जिन्दगी का एटीट्यूट बिलकुल मुख्तलिफ है । तुम अपने सोशलिज्म ओशलिज्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि जिन्दगी का गहरे से गहरा मतलब तुम्हारे लिए साफ हो गया है । जैसे कोई बड़ा सरकश का घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया, पर जिन्दगी अगर इस तरह लटके और फार्मूलों में बाँधी जा सकती, तो आज तक कब की खत्म हो जाती....जी....साहब सोशलिस्ट हैं, पर आज जो कुछ भी हम कुत्तों के समाज से आप इन्सानों को मिला है, हम वापस ले लें....

[टच्यूटर साफ है कि इन बातों को निरर्थक समझता है ।]

हाँ, हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरीज हमारे बाजार, हमारे....

टच्यूटर : (उठकर बाहर खिड़की की तरफ झाँकता है, गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है ।)

गृहस्वामी : क्या वे आ रहे हैं ?

टच्यूटर : (चुपचाप बाहर झाँक रहा है ।)

गृहस्वामी : यह कैसी पार्टी है । (टहलता हुआ) आप लोग वाकई....(फिर बैठ जाता है) मैं कहता हूँ कि आने वाली जेनरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की हमसे अच्छी होगी....हमसे ।

टच्यूटर : (मुसकराता है ।) वे शायद पीछे से पार्क में चले गये !

गृहस्वामी : (चौंककर) पार्क में ? और कुसुम की तबीयत स्ट्रेण्ट हार्ट, कैफिया स्परिंग.........मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता की तशबीह एक बड़ी दुकान से दी गयी थी, ऊपर-ऊपर-ऊपर चढ़े चले जाइए पर नीचे जमीन की आँखें हम हजम करने के लिए बेताब हैं—वाकई आनेवाली जेनरेशन, पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आती नहीं। यही जमीन की आँख जब बजाय हजम करने के कै कर देती है....

[भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा कड़ाई से टयूटर की तरफ देखता है। टयूटर उस नजर को बचा कर बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाजे से एक मोटी अधेड़ रमणी, महीन सफेद बेल लगी बनारसी साड़ी पहने, एक जरा दुबली रमणी, महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ, दोनों नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन और चूड़ीदार पाजामा में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं—जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हँसती हैं,जब दूसरे का कोई साहसपूर्वक भेद जानती हैं।]

मोटी रमणी : (पास की कुर्सी पर बैठ जाती है. गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद 'बैठिए' कहता है) हम लोग पार्क में चले गये थे। हँस कर) आपका डिनामाइट भी हमने देखा (सब हँस पड़ते हैं।)

गृहस्वामी : (जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनामाइट ?

[युवक ने उन लड़कियों को बैठाल दिया है। सफेद धोती वाली भी, जो गृहस्वामिनी है. बैठ जाती है। उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है। सिर्फ युवक खड़ा रहता है।]

मोटी रमणी : आपका डिनामाइट (फिर हँसी होती है।)

गृहस्वामी : (गम्भीर होकर) खैर, यह तो मजाक है। पर यह मैं जानता हूँ और मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले-बारूद एक आदमी की

मर्जी से, चाहे वह हजारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं ।

[अब की वह खुब हँसी शुरू करता है ।]

गृहस्वामिनी : यह लोग योग बहुत जानते थे, अब सब बेचारे भूल गये !

[फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी ।]

युवक : आपका यह ख्याल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताकत पैदा करनी होगी ।

गृहस्वामी : (हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों ? और ऐसी ताकत मौजूद है, अगर हजरत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचायेगी, तो वह ताकत काम में लायी जायेगी—बेचारा गाँधी क्या कहता है ?

युवक : गाँधी तो सठिया गया है—

[लड़कियाँ आपस में धीमी हँसी हँसती हैं ।]

मोटी रमणी : मैं तो वह कुछ जानती नहीं । लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया-सी कोई मलका हो जाय, तो सब फिर ठीक हो जाये । दुनिया की यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आयी ।

युवक : विक्टोरिया क्या करेगी ?

मोटी रमणी : तुम्हारा तो कहीं पता न था तब । विक्टोरिया के ही राज में सुख था....

गृहस्वामी : खैर, लड़ाई-भिड़ाई की बात छोड़िये........मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ ।

गृहस्वामिनी : क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे ? कहीं घूम आयें ।

गृहस्वामी : खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं....।

युवक : (लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसका कर बैठ जाता है । बड़ी लड़की उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है ।) हाँ, तो आपका वह किस्सा ?

गृहस्वामी : वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ,

तो हम लोग आगा तुराब के हाते के पास एक बँगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन-चार घर मुसलमानों के थे। खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जायें या हम लोग हिन्दुओं की। जब वहाँ गये, तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हमसे डरे हुए हैं और लाठियाँ लिये अपना सामान और बीबी-बच्चे लिये जा रहे हैं। हाँ, उसी तरह यूरोप में सब एक-दूसरे से····

गृहस्वामिनी : बेबी क्या घूमने गयी है ?

युवक : (अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

छोटी लड़की : (धीरे से) अब साढ़े-सात बजे हैं।

गृहस्वामिनी : रिकार्ड सुनियेगा? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं।

युवक : (ओठ दबाकर) कोई गाना ही गायें।

[लड़कियाँ, खासकर बड़ी, शर्माती हैं।]

गृहस्वामी : ओ बेटियों गाओ न····

मोटी रमणी : आप गाइये, इन बेचारियों को क्या आता है ?

गृहस्वामी : ओहो, तो आप ही गाइये।

[सब इसे पढ़ते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा हो जाता है।]

मोटी रमणी : (युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ।

युवक : (ऊबा-सा) विलायत का किस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी : ये लड़कियाँ खेलती हैं। इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामिनी : ब्रिज क्या होगा ? आइये····

[गृहस्वामिनी एकबारगी उठकर भीतर जाना चाहती है।]

मोटी रमणी :
गृहस्वामी : कहाँ ?

गृहस्वामिनी : (द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए काफी-आफी ही मँगाऊँ....

मोटी रमणी : काफी क्या होगी—बैठिये बात करें—अभी तो खाना है।

[सब फिर हँस पड़ते हैं और घड़ियाँ देखते हैं और सन्नाटा हो जाता है।]

गृहस्वामी : (युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना।

मोटी रमणी : ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामी : बेबी के लिए रखा है, बवाल जान हुआ रहा है।

गृहस्वामी : (मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से बहुत ऊँचा है और जो नौकर-मालिक का सम्बन्ध हममें है वह इसकदा हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुकाबला भी नहीं करता। उनका पाक ख्याल है कि वह हम लोगों के साथ इन्टेलेक्चुअल एक्स्पेरिमेण्ट कर रहे हैं।

[कुछ समझदारी से और कुछ नासमझी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं। केवल युवक गम्भीर है।]

गृहस्वामी : उन्हीं का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यही हाल है। वे किताबों के अधकचरे असर से बगावत तो करना चाहते हैं। वे नहीं कर सकते और मैं आपसे पूछता हूँ (एकबारगी युवक की ओर देखकर नजर हटा लेता है।) यह बगावत किसके खिलाफ है। आप नेचर से बैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते। आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताकत आपका सर फटने से नहीं रोक सकती। (एकबारगी धीमा पड़कर।) तुम उन्हें समझा देना....

गृहस्वामी : मुझे तो आपकी बात पसंद आयी कि विक्टोरिया जैसी मल्का कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आयें····

मोटी रमणी : (गर्व से तनकर) लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा', राजा तो ईश्वर है····

गृहस्वामी : खैर, मैं तो यह नहीं मानता····

युवक : (ऊबा-सा) आइये कुछ खेलें····

गृहस्वामी : ताश से मुझे नफरत है, बिलकुल छिछोरा खेल है····

गृहस्वामिनी : फिर क्या खेंले, तुम्हीं बताओ····

मोटी रमणी : मैं एक खेल बताती हूँ ···हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरह। (सब लोग उसकी तरफ गौर से देखते हैं) एक आदमी, जैसे मैं कुछ चीजों का नाम लूँ, जैसे कमरा—

छोटी लड़की : (चटक आवाज में) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एक-एक कागज और पेन्सिल ले लें और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना सोचे कई चीजों के नाम ले, जैसे कमरे और हम लोग सब उस लफ्ज को सुनकर एकदम जो उनके मन में आये अपने कागज पर लिख लें, फिर सबके कागज पढ़े जायें····

युवक : क्या खेल है, (अपने को सँभाल कर) यह तो अच्छी खासी साइकोलोजिकल स्टडी है।····

गृहस्वामिनी : (उत्साह से) मैं कागज लाती हूँ····

[भीतर जाती है और जरा देर में चिट्ठी लिखने का पैड लेकर आती है। लड़कियाँ इस बीच आपस में कुछ फुसफुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।]

गृहस्वामिनी : लीजिये····

[युवक पैड लेकर सबको कागज देता है। दोनों लड़कियाँ कागज लेती हैं और फौरन रख देती हैं। मोटी रमणी भी कागज लेती है और फौरन रख देती है, पर फौरन कहती है।]

मोटी रमणी : मैं····मैं तो नाम लूंगी····

गृहस्वामिनी : (कागज लेती हुई) अरे कागज लाओ बेटी····

[लड़कियाँ झेंपती हुई कागज उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फाउण्टेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी (अपनी माता को) दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।]

मोटी रमणी : तुम भी कागज ले लो राजाजी····

युवक : मैं तो नाम लूंगा।

मोटी रमणी : (पेन्सिल उठाते हुए) अच्छा।

युवक : (सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या कहूँ ? (हँसता है) अच्छा 'कमरा'—(सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा ! 'बिजली' (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा-अच्छा····पैरेम्ब्यूलेटर (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा-अच्छा, अब क्या····अच्छा 'सेक्स'।

गृहस्वामी :
मोटी रमणी : सेक्स ?

युवक : हाँ, हाँ।

गृहस्वामी : क्या, सेक्स ?

युवक : यह भी लफ्ज है। आपने कहा था बिना सोचे नाम लो····

[सब लिखते हैं।]

युवक : अच्छा बस····

[सबसे पहले लड़कियाँ अपना कागज मेज पर रखती हैं। सबसे बाद में गृहस्वामी]

मोटी रमणी : (कागज उठाती हुई) मैं पढ़ूंगी (कागज उलटती-पलटती है) सबसे पहले मिस्टर सिबल का पर्चा है।
(पर्चा उठाकर। सब गौर से सुनते हैं।)
मकान—जिम्मेदारी, ठीक। बिजली—क्या लिखा है,

हाँ—दिमाग—बिलकुल ठीक, दिमाग ने ही तो ऐसी चीजें निकाली हैं। पैरेम्ब्यूलेटर—शादी—वाह, वाह; मिस्टर सिबल (गृहस्वामी भद्दा झेंपता है) अच्छा, सेक्स—साइन्स, बहुत खूब ! अब किसका कागज है, मिसेज सिबल का ?

गृहस्वामिनी : मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा ।

मोटी रमणी : नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिये ।

गृहस्वामिनी : मेरा बाद में पढ़ियेगा ।

गृहस्वामी : पढ़ने न दो कुसुम ।

मोटी रमणी : अच्छा—कमरा—बाथ रूम....

गृहस्वामी : बाथ-रूम, बाथ-रूम क्यों ?

युवक : खैर, वह भी तो कमरा है ।

गृहस्वामिनी : अच्छा !

मोटी रमणी : बिजली—अन्धेरा ।

गृहस्वामी : हैं....

गृहस्वामिनी : बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूंढ़ी जातीं ।

गृहस्वामी : कुसुम यह क्या है....बेबी क्या पैरेम्ब्यूलेटर पर चढ़ने के काबिल है। मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश किये देती हो ।

गृहस्वामिनी : मैंने तो बेबी लिखा था । अपनी बेबी थोड़ी....तुम्हीं ने कहा था बिना सोचे....

मोटी रमणी : अच्छा सेक्स—शाह नजफ रोड ।

गृहस्वामी : यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी : (अपराधिनी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे....

गृहस्वामी : तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी : कुछ नहीं, मैंने वैसे ही लिख दिया ।

गृहस्वामी : वैसे ही । सेक्स—शाह नजफ़ रोड । वाह-वाह !

युवक : पापा यह तो खेल है । अच्छा अब अगला पढ़िये ।

गृहस्वामी : नहीं''''इसे साफ हो जाने दीजिये''''सेक्स शाह नजफ रोड वाह, वाह (उठकर) इसके माने क्या हैं ?

युवक : पापा यह तो खेल है ।

[मोटी रमणी सब कागज रख देती है । लड़कियां अपना कागज उठा लेती हैं । युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है ।]

युवक : मैं कहता था''''

गृहस्वामी : कमरा—बाथ-रूम-सेक्स, शाह नजफ रोड, क्या कहना है !

[सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे हैं । केवल युवक कुछ व्यग्र है । पाँच ही मिनट बाद जरा-सा पर्दा खिसकाकर नौकर कहता है—मेज लगाऊँ हुजूर ?]

गृहस्वामिनी : हाँ-हाँ (तेजी से उठकर भीतर चली जाती है । भीतर से उसकी आवाज सुन पड़ती है—देवी आ गया—नहीं आया अभी ?)

[मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं । थोड़ी देर बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है । युवक व्यग्र बरामदे की तरफ, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं ।]

ट्यूटर : (अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था ।

युवक : आप क्या यहीं बैठे थे ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : यहीं बरामदे में ?

ट्यूटर : जी हाँ''''

युवक : हूँ''''(टहलता है । ट्यूटर सब जगहों में अपनी किताब ढूंढ़ता है ।)

युवक : आज आपसे पापा की बातचीत हुई ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : क्या बातचीत हुई ?

ट्यूटर : कुछ नहीं—उन्होंने कहा कि आनेवाली जेनरेशन चाहे बिल्ली की हो या सांपों की—पर हमसे अच्छी होगी।

युवक : (चौंककर और ट्यूटर के पास जाकर) किसने कहा ?

ट्यूटर : मिस्टर सिबेल ने—

[युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है। और वह एक कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर जलाता है।]

पर्दे के पीछे

•

उदयशंकर भट्ट
[१९०४–१९६६ ई०]

पात्र

छीतरमल : सेठ
चाँदीराम : सेठ का काका
लालचन्द, नेमीचन्द : दो कांग्रेसी व्यक्ति
दीनू बड़ा मुनीम, डॉक्टर, किरायेदार, दरोगा तथा अन्य व्यक्ति

[सेठ छीतरमल की दुकान। दुकान क्या है मकान है। सामने दालान है जिसमें तीन खुले दरवाजे हैं। पश्चिम की तरफ लकड़ी के तख्तों का पर्दा लगाकर मुनीमों के बैठने का स्थान बना है, जहाँ छोटे-छोटे डेस्कों के साथ दो मुनीम बैठे काम कर रहे हैं। बीच के भाग में बैठने के लिए गद्दे बिछे हैं। बीच में दक्षिण की तरफ एक बड़े गद्दे पर एक ओर गद्दी और तकिये बिछे हैं। एक छोटा-सा लोहे का सन्दूक तथा टेलीफोन बाईं तरफ रखा है। उसके साथ ही मकान में भीतर जाने का दरवाजा है, जिस पर पर्दा गिरा हुआ है। दालान के बाईं तरफ पश्चिम की ओर से जहाँ दो मुनीम बैठे हैं कई प्रकार की संख्या बोलने की आवाज आ रही है—जैसे पांच सौ तीन रु० एक आना दो पाई, छह सौ छब्बीस रु० नौ आना आठ पाई, रोकड़ में जमा। सत्ताईस सौ रुपया बम्बई की गाँठों का आदि-आदि। सब संख्याएँ तीन-चार संख्यावाली हैं। कभी-कभी एक मुनीम दूसरे को डाँटता भी सुनाई देता है, या कभी-कभी एक दूसरे पर व्यंग्य भी करता है। दाईं तरफ भी इसी तरह एक पर्दा डालकर कुछ कुर्सियाँ, बीच में एक मेज और एक सोफा-सेट बिछा दिया गया है। नीचे एक कार्पेट बिछा है। दाईं ओर का भाग भी दर्शकों के सामने ही है। इस समय पर्दा नहीं है। यहाँ फर्म के मालिक सेठ छीतरमल की गद्दी है। छीतरमल की अवस्था ४२ वर्ष और शरीर दुहरा है। बन्द गले का लट्ठे का कोट, काश्मीरी बेल-बूटे की टोपी, पतली धोती, पैर में काला पम्प शू पहना है। रंग गेहुँआ, नाक मोटी, चेचक के दागों से भरी, आँखें चश्मे के भीतर मर्मभेदी। शरीर पुष्ट। मुँह में कुछ-न-कुछ चबाते रहने की आदत।

बात करते समय दाँत बाहर निकल आते हैं और तमाम चेहरा मुड़े हुए अखबार की तरह सिमट जाता है; जैसे घिघियाकर बात कर रहा हो। बात करते समय बातों के आधार पर मुख के कोण बनते हैं। अँगुलियों में कई प्रकार की अँगूठियाँ, और यदि कभी पैर खाली दिखायी दें तो पैर के दोनों अँगूठों में एक-एक चाँदी का छल्ला भी दिखायी देगा। इस समय बाईं ओर एक डॉक्टर कुर्सी पर बैठा है। डॉक्टर सर्ज का काला सूट पहने है। आँखों पर चश्मा, शरीर भारी, रंग साँवला। कभी-कभी स्टेथिस्कोप हिलाता है, कभी उसे जेब में रख लेता है। वह सेठ के पशु-अस्पताल का नौकर है। उसकी अवस्था है लगभग पैंतीस वर्ष। इस समय डॉक्टर अकेला है। सेठ ने उसे बुलाया है। नौकर दीनू जैसे ही स्टूल पर गंगासागर लाकर रखता है वैसे ही डॉक्टर बोल उठता है।]

डॉक्टर : दीनू, सेठजी कब आएँगे भाई ?

दीनू : (स्टूल पर गंगासागर रखने के बाद जेब से बीड़ी निकाल कर सुलगाता हुआ) बैठो डॉक्टर साब, बैठो, सेठ आने ही वाले हैं। गजब, एक आने की आठ बीड़ी ! कभी एक आने का बंडल मिला करे था, बंडल ! सब चीजों में आग लगी है। पैसे की कोई चीज न रही जी डॉक्टर साब, (पास आकर) मेरी भानजी खाँसी के मारे मरी जा रही है। कोई द्वाई दे दो न ! तुम तो कबूतरों का इलाज करो हो डॉक्टर साब !

डॉक्टर : (पैर तथा स्टेथिस्कोप हिलाता हुआ) खाँसी कब से है ?

दीनू : (बीड़ी का कश खींचकर) ये ही कोई दो मीन्हें से डॉक्टर साब, जहाँ खाया वहीं उलट धरे है। रातों खाँसे है, मेरी दारी सोने भी तो नी दे है और थारे कबूतरों, बन्दरों, जानवरों का के हाल है ?

[मुनीम बाईं तरफ से बाहर निकल आता है।]

रामधन : डॉक्टर शाव, कोई पेट का भी इलाज करो हो ? भूख ही मारी गयी । कुछ अच्छा ही नहीं लगे । दीनू, ओ रे सुन, जाके झींगे की दूकान से दो तेल की खस्ता कचौरी तो ले आ । ले दो आने । (पैसे फेंकता है) और चटनी जरूरी लइयो । कह्यो गरम-गरम दे । जा, अभी काम करना है । सारी रोकड़ मिलाने को पड़ी है । हाँ, तो फिर क्या कहो हो ? तुम भी लोगे क्या एक-दो कचौरी डॉक्टर शाव ! कचौरी बड़ी नायाब बनावे है, झींगा । हाँ, तो पेट····(दीनू जाता है)

डॉक्टर : आश्चर्य तो यह है कि तुम बीमार क्यों नहीं हो गये पूरी तरह, और मर नहीं गये ?

रामधन : क्या कहो हो डॉक्टर साब ! मैं क्यों मरता भला ? ये भी अच्छी रही, पेट की बीमारी का हाल कहो तो लगे मारने । तनख्वाह तो तुम्हारी यहीं से जाय है न ?

डॉक्टर : (उठकर) मुनीमजी, मेरा मतलब सुनो तो सही ।

रामधन : देख लिया तुम्हारा मतलब ! तुम्हारे जैसे सैकड़ों हैं सैर में । क्या कमी है ? हमने कहा घर के अपणे ही हैं पूछ लो । पर यहाँ तो (दीनू आता है)—ले आया दीनू ? ला भीतर ले आ । पानी भी एक गिलास लइयो । (घुटने जोड़कर खाने लगता है)

डॉक्टर : मेरा मतलब यह नहीं है । मैं तो कह रहा हूँ तेल की कचौरी रोग पैदा करती है । इससे लीवर खराब होता है । वह इन्टेस्टाइन में जाकर जम जाती है और तुम्हारे जैसे····(आगे बढ़ता है)

रामधन : रहने दो, आगे कहाँ जूते पहने बढ़े चले आओ हो ? भिष्ट कर दोगे क्या ? रहो । (वहीं से एक मुनीम को आवाज देता हुआ, मुंह में कचौरी भरकर) घीसालाल, सेठ मन्नालाल रामपत का भी हिंशाव तैयार कर लीजो, रोजाना के खाते से । मैं बस अभी आया । आधी कचौरी रह गयी है । ला दीनू, पानी दे । (किनारे

पर बैठकर) ला ओक से ही प्या दे मेरे यार ! (पानी पीता है डकार लेकर) शिव शंकर, क्या बढ़िया कचौरी बनावे है मेरा यार, बस जी करे है खाते जावें। (धोती से हाथ-मुँह पोंछकर, फिर एक डकार और लेता है) हाँ घीसालाल क्या कहा तैने ? (जाकर बैठ जाता है। फिर उसी भाग से हिसाब-किताब की कई आवाजें आती रहती हैं।)

दीनू : डॉक्टर साब, थारी कसम, लो बोलो, पाणी पिओगे क्या ? ताजी अभी भरकर लाया हूँ। सिगरेट लाऊँ थारे लिए ? बस, ऐसी दवा दो कि छोरी खाते ही ठीक हो जाय। तुम्हारी कसम, रात्तों नी सोने देत्ती। मैं तो कहूँ मर जाय तो ही अच्छा।

डॉक्टर : ठीक हो जायेगी। सुना, क्या हाल है हमारे सेठ का ?

दीनू : गप्फे हैं गप्फे ! (दोनों हाथ मिलाकर अँगुलियाँ गोल करके धीरे से) क्या पूछो हो; न हजार का ठीक, न लाख का। एक हम हैं सवेरे से शाम तक जी-हुजूरी करते रहे। तीन लाख तो अभी-अभी हाथ आया है। वैसे है सेठ भला। नौकरों को एक-एक कुर्त्ता एक एक धोती दी। (मुनीम की तरफ इशारा करके धीरे से) इन्हें भी बहुत कुछ दिया। मेरी लड़की का ब्याह था, सौ दे दिये। (उपेक्षा से) ऐसे ही गुजर-बसर हो री है डॉक्टर साब, सुने हैं तुम्हारे अस्पताल में भी एक कमरा और बनेगा। हमारा सेठ वैसे परोपकारी है। वैसे तुम जानो बेईमानी कौन नी करे है, पर दान करता रहे तो सारा पाप धुल जाय है। मन्दिर बनवा दो, धर्मशाला बनवा दो, बामनों को खिला दो बस ! (डॉक्टर अपने ध्यान में मग्न है, दीनू उसके सामने कहता जा रहा है, कभी कभी दरी-गद्दे की सिकुड़न भी ठीक कर देता है। कपड़ा लेकर सन्दूक भी साफ कर देता है) इतनी बीत गयी और भी बीत जायगी डॉक्टर साब। घीसालाल जी पाणी पिओगे क्या ? ताजा है, अभी

भरा है। कचौरी-अचौरी मँगाओ तो थाने भी ल्या दूँ (वहीं से आवाज आती है 'दीनू जरा-सा पाणी तो दावात में दे जा') ल्याया जी, अभी ल्याया। (पानी लेकर देता है) क्यों गूंगे हो डॉक्टर साव ! (पास जाकर धीरे से) सेठ से कहो तुम्हें भी कुछ दे दे, तनखाह बढ़ा दे। आजकल गप्फे हैं गप्फे। सेठानी तीर्थों को जा री है।

डॉक्टर : (अपने आप बेचैनी से) न जाने कब तक बैठना पड़ेगा ?

दीनू : बस अब आते ही होंगे। बाहर गये हैं, बस, इब आई मोटर। बड़े साब के पास बुलाया था। कहे हैं चोर-बाजारी की थी, उसी के मामले में। (पास जाकर धीरे से) देख नी रहे बहियाँ बदली जा री हैं। दिन-रात काम होवे है। बड़े मुनीमजी भी साथ हैं। (मोटर का हार्न) लो आ गये। बड़ी उमर है सेठजी की।

[सेठ उसी रूप में बड़े मुनीम के साथ आता है और फिर चुपचाप बीच के भाग में खड़ा होकर मुनीम को समझाता है। एकदम डॉक्टर के ऊपर नजर पड़ जाती है।]

सेठ : अच्छा, डॉक्टर साहब, आ गये क्या ? न हो थोड़ी देर घूम आओ। दीनू, देखे क्या है, ले जा डॉक्टर साहब को बाहर ! (डॉक्टर, जो सेठ के आने के समय से ही खड़ा है, दीनू के साथ बाहर निकल जाता है) अच्छा, बहियाँ तो बदल गयीं, आगे क्या करना है ?

बड़ा मुनीम : कुछ नहीं, अब वे क्या कर सकते हैं ? भगवान् ने चाहा तो उनके पितरों को भी पता नहीं लगेगा सेठजी !

सेठ : हाँ (चारों तरफ देखकर) ठीक है। चौकस रहो। फिर कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। साहब से मैंने तो कह दिया— बेईमानी करनेवाले की ऐसी की तैसी। तुम जानो, भला हम क्यों बेईमानी करते ?

बड़ा मुनीम : यह तो व्यापार है। दो पैसे सभी कमाना चाहे हैं। मैंने भी कहा वैसे सभी कुछ तो सरकार का है। हम क्या नहीं चाहते.........जो कुछ हो ठीक हो !

सेठ : (घूमता हुआ) हाँ हाँ, ठीक है। बात ऐसी करो....तुम जानो कि आदमी गिरफ्त में न आवे। तुम ठीक कहा। मैं सबको देख लूंगा। (सामने खड़ा होकर अपने जूते की ओर इशारा करके) चाँदी का चाहिए। वैसे इसे ऋषि-मुनि भी छोड़ नहीं सके....तुम जानो। फिर इनकी तो बात ही क्या है ! (आँखें मटकाकर) पर इसका ख्याल रखना ही पड़ेगा। न हो, दो-सौ चार-सौ फेंक दो उसकी तरफ भी, कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डाल दो तो काटना क्या भौंकना भी छोड़ दे। चाचाजी कहा करे थे, रुपया कमाओ तो एक आना भूरसी में दो.........कैसे भला, एक पैसा नौकरों में बांटो, एक पैसा फेंककर अफसर का मुंह बन्द करो, दो पैसे दान करो.....तो पन्द्रह आने पचे-पचाए धरे हैं।

मुनीम : मुझे क्या बताओ हो सेठजी, इसी घर में तो पला हूँ। वैसा तो आदमी होना मुश्किल है। इतने गरीब निवाज, एक बार काका बीमार हो गये तो सुबह-साँझ दोनों बखत जाते थे देखने। उन दिनों हकीम, वैद होवे थे, सो उन्होंने उनसे कह दिया—रुपये की फिकर न करना, घर भर दूंगा वैदजी ! बस, मेरे मुनीम को अच्छा कर दो।

सेठ : मुझे याद है। तुम्हारे व्याह में ही सब कुछ अपने हाथ से किया।

मुनीम : घीसालाल, बहियों का क्या हाल है ?

घीसालाल : तैयार है बस, सब मामला। रामधन जी कह रहे हैं....

सेठ : उस डॉक्टर को तो बुला घीसालाल, यह भी बड़ा कामचोर है। (घीसा जाता है) काम-धन्धा करेगा नहीं और चाहेगा कि तनखा बढ़ जाय। (तेजी से) बढ़ा दूंगा तेरी तनखा। चोर न हो कहीं

का। (मुनीम से) कोई और नहीं है ? यह तो घरेलू इलाज के भी काम का नहीं है। बाई को पिछले दिनों बुखार आया, वह भी तो नहीं उतार सका। पर जब देखो, इसका भी एक आदमी है इनकमटैक्स आफिस में।

मुनीम : मुझे तो इसमें कोई चतुराई नहीं दीखती। मेरी बाई की तो इससे खाँसी भी ठीक नहीं हुई, बुखार तो क्या जाता ? पर अब तो काम निकालना है सेठजी !

सेठ : नालायक है नालायक ! लो आ गया, तुम जाओ। (डॉक्टर आता है) आइए डॉक्टर साहब, आइए। कहिए मिजाज तो ठीक है न ?

मुनीम : हमारे उस मामले का क्या हुआ डॉक्टर साहब ? बात यह है, वह काम तो होना ही चाहिए।

सेठ : मैं बात करूँगा मुनीमजी, तुम जाओ। (मुनीम जाता है) हाँ बैठिए न इधर बैठिए सोफे पर। अरे दीनू, देख सामने की दूकान से डॉक्टर साहब के लिए चाय-वाय ला। अच्छा रहने दे, फिर सही। हाँ, तो कहिए अस्पताल का क्या हाल-चाल है ?

डॉक्टर : इस अस्पताल के कारण सारे देश में आपका नाम हो रहा है। मनुष्य के लिए तो सभी अस्पताल खोलते हैं, जानवरों के लिए भी सरकार ने अस्पताल खोले हैं, परन्तु आपने पक्षियों और जानवरों दोनों के लिए अस्पताल खोला है, उससे सारी जगह नाम है।

सेठ : खैर, वह तो है ही, तो क्या कुछ समाचार-पत्रों में निकला है ?

डॉक्टर : जी, यह लीजिये 'आदर्श' ने लिखा है कि सेठ छीतरमल जैसा दानी, परोपकारी व्यक्ति होना दुर्लभ है। यह पशु-पक्षियों के चिकित्सालय के सम्बन्ध में एक लेख 'लोक-पंच' में निकला है। इसमें मेरी भी काफी प्रशंसा की गयी है।

सेठ : 'आदर्श' के सम्पादक को तो मैं जानता हूँ, उसे मेरी फर्म का विज्ञापन मिलता है। 'लोक-पंच' का सम्पादक कौन है ?

डॉक्टर : वह मेरे एक मित्र हैं।

सेठ : क्या हमारे सम्बन्ध में 'नवीन भारत', 'विश्व-सन्देश' जैसे पत्रों में कुछ नहीं निकल सकता ? मेरा मतलब, (बात का प्रसंग बदलते हुए) अस्पताल के सम्बन्ध में बराबर कुछ-न-कुछ निकलते रहना चाहिए। तुम्हें मालूम है मैंने तीस हजार रुपया खर्च करके अस्पताल का मकान बनवाया है। पन्द्रह हजार की दवाइयाँ और आठ सौ-नौ सौ का खर्च ऊपर से।""लो काकाजी आ गये। सब मिलकर इतना तो अब तक हो ही गया।

[सेठ के पिता का भाई शुद्ध मारवाड़ी वेश में तिलक लगाए, माला हाथ में लिए, लगभग साठ वर्ष की उम्र का, प्रवेश करता है। केवल मुँह में ही राम-राम कहता हुआ और गोमुखी में माला फेरता हुआ चुपचाप आकर बीच की गद्दी के किनारे बैठ जाता है। रह रहकर गोमुखी हिलाता है, नाम है चाँदीराम]

चाँदीराम : अस्पताल का क्या हाल है डॉक्टर साहब ? राम, राम ! राम, राम !

डॉक्टर : जी, ठीक ही चल रहा है। इस समय दो बैल, सात घोड़े, दो गधे, पन्द्रह कबूतर, चार बटेर, दो तीतर और सौ चिड़ियाएँ हैं। उनमें दस कबूतर, एक बटेर, दोनों तीतरों और चालीस चिड़ियों का इलाज हो रहा है। एक बन्दर भी आज दाखिल हुआ है। सवेरे ही उसका ड्रेसिंग हुआ है। पशु ठीक हो रहे हैं।

चाँदीराम : सवेरे जब मैं मन्दिर से लौटकर गया तो वहाँ कोई भी नहीं था। (राम राम जपना)

सेठ : देखो डॉक्टर, सुना है तुमने अपनी प्रैक्टिस भी शुरू कर दी है। यह ठीक नहीं है। डेढ़ सौ रुपया नगद तनखा का मिले है

फिर उसी में गुजारा करोः तुम जानो, रुपया मुफ्त में थोड़े ही आवे है !

चाँदीराम : इसका मतलब तो यह है कि बीमारों का इलाज ठीक नहीं होता । (राम राम जपना)

डॉक्टर : अस्पताल तो आठ बजे खुलता है । वैसे आपने कहा था कि अस्पताल के बाद प्रैक्टिस कर लिया करो । वही करता हूँ । आजकल डेढ़-सौ में गुजर भी तो नहीं होती । इतना बड़ा परिवार है । मकान का किराया भी मारे डाल रहा है । यदि····

चाँदीराम : पर अब तो रोगियों की संख्या इतनी है कि तुम्हें फुरसत ही नहीं मिलती होगी । साफ है, बीमारों का ठीक से इलाज नहीं होता होगा । (राम राम जपना)

सेठ : डेढ़ सौ मैंने इसलिए दिये कि तुम मन लगाकर काम करोगे । वैसे एक डॉक्टर सवा सौ लेने को भी तैयार था । सेवा का काम है ।····

चाँदीराम : सेवा का भाव रखो डॉक्टर साहब, स्वर्ग मिलेगा । राम राम····

डॉक्टर : (कुछ चुप रहकर) पेट नहीं भरता सेठजी, नहीं तो हम भी सेवा ही करते हैं ।

चाँदीराम : सन्तोष का फल मीठा होता है डॉक्टर साब, अरे घीसालाल ! (राम राम जपना····)

घीसालाल : जी आया !

चाँदीराम : छीतर, इनकमटैक्स का क्या हुआ ? माने वे लोग ?

सेठ : उनका भी इलाज किया जा रहा है काका !

चाँदीराम : (गोमुखी हिलाता है, घीसा आता है ।) कितना काम हो गया रे ?

घीसालाल : तैयार है मामला । सब बहियाँ ठीक हो रही हैं ।

चाँदीराम : भौंरे में····हाँ समझा ।

सेठ : हाँ, तो डॉक्टर साहब, सोच लो, प्राइवेट इलाज करना तो तुम जानो ठीक नहीं है। आज मैंने तुम्हें इसीलिए बुलाया है। मैंने सुना था, काका कह रहे थे मन्दिर से लौटते हुए कि····

डॉक्टर : सेठजी, फिर तनखाह ही बढ़ा दीजिए। (गिड़गिड़ाता है)

सेठ : लूट का माल है डॉक्टर, या कोई भण्डार खोल रखा है ?

चाँदीराम : (गोमुखी हिलाकर एकदम) तभी देश का वेड़ा गरक हो रिया है डॉक्टर। (राम-राम-राम-राम जपना)

डॉक्टर : काका साहव, भूखे रहकर सेवा कैसे करें ? सब कुछ इतना मँहगा है। तीन वच्चे, बीवी, मैं, एक बूढ़ी माँ। कैसे गुजारा हो ? आपके पास इतने मकान हैं, यदि एक मकान मिल जाय तो चालीस रुपये किराये के वचें।

सेठ : हुँह, आजकल मकान हैं कहाँ, और जो हैं वे किराये पर हैं। डेढ़ सौ से कम तो किसी का किराया भी नहीं, फिर आपको कैसे दे दूँ ? और मकान की तो नहीं ठहरी थी।

चाँदीराम : आज मेरे सब मकान खाली करा दो तो देखो हर एक मकान ढाई-सौ तीन-सौ पर चढ़ता है कि नहीं, फिर पगड़ी तीन हजार फी मकान अलग ! चलो इतना ही करो। किसी अफसर से मिलकर खाली करा दो। मैं अपने मकानों में से खोजकर एक तुम्हें चालीस पर दे दूँगा। (राम-राम-राम) जाओ, विजली-पानी दे देना।

सेठ : तीस तो बिजली-पानी का ही पड़ जाता है। अच्छा एक काम करो डॉक्टर, मुझे तुम्हारा बड़ा ख्याल है। तुम्हारे दस रुपये बढ़ा दिए जाएँगे, सिर्फ दो लेख महीने में किसी अखबार में अस्पताल के सम्बन्ध में निकलवा दिया करो। वोलो है, पक्की ?

चाँदीराम : देखो, दस रुपये थोड़े नहीं हैं। सेवा का काम है। और उन लेखों में संस्थापक, अस्पताल का नाम जरूर छपे। (राम-राम जपना) और वह तो छपेगा ही ! भला उसके विना अस्पताल क्या ?

सेठ : अस्पताल से हमें क्या लाभ है, तुम्हीं सोचो। हमने तो सिर्फ परोपकार के ख्याल से यह काम शुरू किया है। मनुष्यों के लिए तो लोगों ने अस्पताल खोल ही रखे हैं। इन बेचारे पशु-पक्षियों की भी कोई पूछने वाला हो? मैं तो जब किसी पशु-पक्षी को दुखी-बीमार देखूं हूं, दया के मारे जी भर आवे है।

चाँदीराम : इनका तो दुख नहीं देखा जाता, नहीं तो हमें क्या पड़ी जो मुफ्त की मुसीबत मोल लें। बोलो, है मंजूर? (राम-राम, राम-राम) भला, तुम सुबह-शाम भजन भी करो हो? भजन किया करो भजन। सब पाप काटनेवाला वही है चक्र-सुदर्शनधारी गिरधारी। मदनलालजी, मदनलालजी!

बड़ा मुनीम : जी काका साहब, हाजिर! (आता है)

चाँदीराम : मुनीमजी, रामपत की फर्म से सब रुपये की वसूली हो गयी?

बड़ा मुनीम : अभी तो काका साहब, आधा रुपया दिया है। आधा कहते हैं, आगे के महीने में देंगे। उस बैरिस्टर ने इस मास का किराया नहीं भेजा। घीसालाल, जा तो सही, किराया क्यों नहीं देता?

घीसालाल : सवेरे गया तो था। कहता था, सेठ से बोलो—पहले हमारा मेहनताना दे पचास रुपया, फिर किराया देंगे।

चाँदीराम और सेठ : (दोनों) कैसा मेहनताना?

बड़ा मुनीम : वह अर्जी दावा दायर कराया था न, सोनीमल हरभजन के खिलाफ।

सेठ : तो इससे क्यों कराया? अपना वकील कहाँ गया था?

चाँदीराम : आ गयी न मुसीबत! तभी तो कहता हूं सोच-समझकर काम करो। आजकल जमाना बड़ा खराब है। कितना काम था?

बड़ा मुनीम : अपना वकील उस दिन कहीं बाहर गया था। मैंने कहा, उसी से करा लो। बैरिस्टर की कुछ चलती तो है नहीं, दया आ गयी। इसी से मुंशी ने अर्जी लिखी और बैरिस्टर ने दस्तखत करके कचहरी में पेश कर दी थी।

चाँदीराम : बस, इतनी-सी बात के पचास रुपये ? हद हो गया। लूट है लूट। उससे कहो कुछ काम भी हो, बारह रुपये पर फैसला करा लो। (राम-राम जपना)

सेठ : हाँ फिर, डॉक्टर साहब बोलो क्या सलाह है ? सिर्फ दो लेख ! इससे एक तो तुम्हारा नाम होगा, इधर हमारा काम....काम क्या, अस्पताल का प्रचार।

चाँदीराम : मान जाओ डॉक्टर साब, चलो हो गया। दस बढ़ा दो। अपने ही आदमी हैं।

डॉक्टर : (चुप रहकर) पर हर मास अखबार में छपवाना....तो वे भी तो माँगेंगे। आखिर उनको क्या लाभ है अस्पताल की खबरें छापने से ?

चाँदीराम : क्यों, लाभ क्यों नहीं ? हमी उस अखबार के ग्राहक बन जायेंगे, और दो को बना देंगे। एक तुम भी बन जाना। एक कम्पाउण्डर होगा। थोड़ा लाभ है ? और फिर उससे हमारा कुछ काम बढ़ा तो उसे भी कुछ दे देंगे।

डॉक्टर : मैं नहीं समझा।

सेठ : इस बार हमारी सलाह है, चीफ कमिश्नर को बुलाकर अस्पताल दिखाया जाए।

चाँदीराम : क्या बुरा है, क्या बुरा है ? सब शहर के बड़े आदमी भी उसी वखत आ जाएँ।

बड़ा मुनीम : (आता हुआ) डॉक्टर साहब, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। इस घर (सेठ के) में किसी बात की कमी नहीं रहती। तुम तनखा के लिए लड़ो हो। यहाँ का नौकर राजा की तरह रहे हैं। चाहिए लगन से काम करने की आदत। कुछ करके दिखाओ फिर सेठजी से कहने की जरूरत नहीं होगी। समझे ! काकाजी जैसा दयालु तो होना मुश्किल है। देख नहीं रहे ? बिना ब्राह्मणों को भोजन कराए भोजन नहीं करते। यह दूसरी बात है कि वे घर के ही रसोइए हैं।

सेठ : मैं तो आज तुम्हारे पाँच सौ कर दूँ। पाँच सौ का काम करो।

डॉक्टर : मैं जी लगाकर काम करता हूँ। सिर्फ अस्पताल के बाद प्राइवेट प्रैक्टिस करता हूँ, और जो काम कहिए करूँ।

सेठ : इन्हें समझाओ मुनीमजी, मैं अभी आया। (भीतर की तरफ से मकान में चला जाता है; वृद्ध आँख मींचकर भजन करने लगता है, मुनीम और डॉक्टर बैठ जाते हैं।)

बड़ा मुनीम : बात यह है 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला काम है यहाँ तो। तुम्हारी जान-पहचान के बल्कि तुम्हारे ही एक रिश्तेदार इनकम-टैक्स के अफसर हैं। उनसे कहो, हमारे काम में कुछ रिआयत करें तो सेठजी तुम्हें भी देंगे और उन्हें भी कुछ दे देंगे।

चाँदीराम : हम कुछ मुफ्त का काम नहीं कराते। मामला अटक रहा है। चलो यही सही।

बड़ा मुनीम : बात को समझा करो। ये बातें खुलकर नहीं की जातीं डॉक्टर साहब!

डॉक्टर : (सोचता हुआ) हाँ, है तो सही, मेरे साले के चाचा का मामा है। मैं आज ही जाऊँगा। देखूँगा····

चाँदीराम : हाँ, जाओ अभी जाओ। नहीं तो गाड़ी ले जाओ। तुम कोई पराये तो नहीं, अपने ही तो हो। दीनू, ड्राइवर से कह दे गाड़ी तैयार कर लावे। तुम भी जाओ मुनीमजी! राम-राम-राम। काम बनाओ पहले। दस बढ़ जाएँगे, पक्के रहे।

बड़ा मुनीम : चलो फिर, न जाओ आज अस्पताल, कम्पाउण्डर तो है ही। आओ चलें।

चाँदीराम : हाँ, जाओ बेटा, जाओ। अस्पताल की क्या बात है? काम होना चाहिए। (बुड्ढा उठकर भीतर चला जाता है। डॉक्टर और मुनीम भी बाहर चले जाते हैं।)

(मुनीम आपस में बातें करते हैं)

रामधन : हाँ बोल न और आगे ?

घीसालाल : बस, अब नहीं । थक गया मैं तो ।

रामधन : मालूम है, मुनीमजी क्या कह गये हैं, सारी रोकड़ आज ही उतारनी है ।

घीसालाल : मुनीमजी का तो एक आना हिस्सा है। हम क्यों करें ? पैंतीस रुपये मिलते हैं, वे भी सूखे । अब मैं नहीं कर सकता । (बही पटक देता है ।)

रामधन : काकाजी आते होंगे । देखेंगे कि चला गया घीसालाल तो शामत आ जाएगी तेरी ।

घीसालाल : (कड़ककर) शामत क्यों ? क्या काम नहीं करा जो शामत आ जाएगी ? इतना ब्लैक से कमाया सेठ ने । हमको क्या मिला ? एक कुर्ता, एक धोती और दस रुपये । बस !

रामधन : और क्या लूटेगा ? फोकट का माल है ? दिन-रात एक करके अफसरों की आँख में धूल झोंककर कमावे हैं तो क्या लुटाने के लिए ?

घीसालाल : तो तुम्हारा पेट भरे तो तुम करो । मुझसे तो जितना होगा, करूँगा । इतनी मुसीबत हैं । गुजारा तो होवे नहीं है । मन्दा है, नहीं तो फाटके में से ही कुछ मिल जाता ।

रामधन : फाटका मत खेला कर घीसालाल, पीशा बरबाद होवे है । मैं तो पिछले महीने चार सौ भर चुका हूँ (सोचकर), और तू कहे तो ठीक ही है । ६० रुपल्ली में होवे क्या है ? पर अब कहाँ जायँ ? सत्तर तो कोई देने से रहा । हाँ, इनसे होली-दिवाली पर कुछ मिल जाय है बस, यही । मालूम है कितना फायदा होगा सेठ को अगर बच गये तो····

घीसालाल : कितना होगा भला ?

रामधन : (धीरे से) दस लाख से ऊपर तो सिर्फ कपड़े और लोहे में ।

घीसालाल : (आश्चर्य से) इतना ? तभी, तभी मुनीमजी ! मेरा मन करे है सब बतला दूँ जाकर पुलिस को ।

रामधन : पागल हो गया है घीसालाल, ऐसा नहीं करते । जिस हाँडी में खाना उसी में छेद करना, धर्म नहीं है अपना ।

घीसालाल : (क्रोध से) तो बेईमानी करना धर्म है ? सरकार को धोखा देना, लोगों को लूटना धर्म है ? क्या ऐसा धर्म मानने योग्य है ? मैं ऐसा धर्म नहीं मानता । जी तो ऐसा करे है अपना गला घोंट लूं । चार महीने से घरवाली बीमार है, उसकी दवा-दारू को पैसा नहीं है । माँ पिछले दिनों जीने से गिर पड़ी, उसका पाँव ठीक नहीं होवे है । न बखत पै रोटी न कुछ, कहाँ से लाऊँ इतना पैसा ? धर्मार्थ औषधालय से दवा लाता हूँ पर फायदा हो तो । पिछले दिनों बहू की कण्ठी बेची ! (आँखों में आँसू भर आते हैं) मर जाय तो पाप कटे ।

रामधन : तो दूसरी कर लेगा, क्यों ? (हँसता है फिर गम्भीर होकर) तू ठीक कहे है घीसालाल, यहाँ भी यही हाल है । तीन बच्चे हैं,बीवी और आप, साठ रुपये तनखा, पर क्या करूँ ? एक तरफ खाई दूसरी तरफ कुआँ । बैठे हैं, शायद कभी अच्छे दिन आयेंगे; किस्मत होगी तो और पेट....भूख ही मारी गयी है ।

घीसालाल : किस्मत कभी नहीं होगी मुनीमजी, गधे की किस्मत में कभी नहीं लिखा कि वह आराम से खाएगा । गरीब की किस्मत नहीं होती, किस्मत होती है मालदार की ।

रामधन : तो फिर तू ही मालदार बनके दिखा ! ये तो ईश्वर के खेल हैं—कोई सुखी तो कोई दुखी; कभी रात, कभी दिन ।

घीसालाल : मैं ये बातें नहीं मानता । ईश्वर को क्या पड़ी है कि किसी को मालदार और किसी को गरीब बनावे । यह तो हमारी समाज-व्यवस्था की कमजोरी है ।

रामधन : अरे, तू तो बड़ा पंडत हो गया है घीसालाल, समाज-अमाज की वार्ता सीख रह्या है रे ! सुन मेरे भाई, ये माना कि देश में खूब अनाज होवे तो फिर किसी बात की कमी नहीं रहेगी। अनाज के तोड़े से ही सब चीजें महँगी हैं।

दीनू : घीसालालजी, तुम कचौरी-अचौरी मँगाओगे क्या ? ताजी बन रही हैं, रहो आज तो मैं भी एक खा ही आया। मजेदार है मुनीम घीसालाल !

घीसालाल : मैं क्या मुंह ले के कचौरी खाऊँगा, दीनू, ये तो मुनीमजी का काम है। सूखी दो रोटी मिल जायँ आजकल तो वही बहुत हैं भाई। अच्छा मैं चला, दवा लानी है। (जाता है)

रामधन : जा हम भुगत लेंगे और क्या, बेचारा दुखी है, इसलिए चिड़चिड़ा रहा है।

[एक-दो खद्दरधारी का प्रवेश]

एक व्यक्ति : (पास जाकर) सेठजी कहाँ हैं ?

रामधन : दीनू, ओ दीनू, देख सेठजी को आपके आने की खबर कर दे। आप बैठो। भीतर गये हैं।

दीनू : बैठो साब, मैं अभी बुलाता हूं।

[दोनों बैठ जाते हैं]

लालचन्द : कम-से-कम पाँच सौ लेना है सेठ से।

नेमिचन्द : हाँ और क्या ! तभी तो पूरा होगा। आखिर सर्वोदय समाज के उत्सव का खर्च तभी तो निकलेगा। इतने नेता आ रहे हैं। संभव है जवाहरलालजी आ जाएँ। फिर तो····

लालचन्द : उम्मीद तो है हमने जिनको बुलाया है वे सभी आ जाएंगे। अच्छा भला तुमने रतनलाल को दिल्ली जाने का कितना खर्च दिया है ?

नेमिचन्द : दो सौ लेकर गये हैं।

लालचन्द : क्यों, इतना क्यों ? दो आदमी और दो सौ ! दो सौ तो बहुत हैं। अगर वे इण्टर में भी जाएँ तो जाने-आने के पचास बहुत हैं।

नेमिचन्द : वे गये हैं सेकेण्ड में और ठहरेंगे होटल में। फिर वहाँ ताँगे में तो चलने से रहे, टैक्सी के विना काम नहीं चलेगा। दूर जो बहुत है।

लालचन्द : हूँ, (सोचता है) फिर नेताओं के ठहरने और खाने-पीने का प्रवंध मेरा रहा।

नेमिचन्द : मेरा और तुम्हारा दोनों का नाम है।

लालचन्द : सो हम कर लेंगे, तुम निश्चिन्त रहो।

दीनू : सेठजी आ रहे हैं। (सेठ का प्रवेश)

सेठ : (देखते ही हाथ जोड़कर) धन्य भाग ! (हँसता है, हाथ मिलाकर) यह सूर्य किधर से उदय हुआ ? धन्य भाग, धन्य भाग ! आइए वैठिए !

नेमिचन्द : हाँ, लालचन्दजी सूर्य के समान हैं तो मैं पुच्छल तारा हूँ। (हँसता है)

सेठ : मैं आप दोनों को सूर्य मानता हूँ। बात यह है कि अधिक प्रकाश में सूर्य एक है या दो—यह जानना मेरे लिए कठिन है। मेरे लेखे तो आप दोनों ही मेरे भगवान् हैं। कुछ जल-वल मँगाऊँ ? अरे दीनू, देख बढ़िया-सी मिठाई तो ला, कुछ नमकीन भी और आधा सेर बड़े अंगूर और दो सोडे की बोतलें। जा ! और सुनाइये, क्या समाचार है ? बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए। गाँधी जयन्ती के इस बार क्या प्रोग्राम हैं ? क्या बताऊँ, आजकल मैं गाँधीजी की आत्मकथा पढ़ रहा हूँ, बड़ा मजा आवे है। खूब थे गाँधीबाबा !

लालचन्द : उसी के सम्बन्ध में आपको कष्ट देने आये हैं। गाँधीजी तो इस युग के अवतार हैं, अवतार !

नेमिचन्द : हम लोगों के तमाम काम आपके ही सहारे हैं। इस बार गाँधी-जयन्ती के सप्ताह में सर्वोदय समाज की मीटिंग, प्रार्थना, प्रवचन,

चरखा-दंगल, खादी-सप्ताह तथा बच्चों के कुछ प्रोग्राम करने की सलाह है। ये तो कह रहे हैं कि एक कवि-सम्मेलन भी किया जाए, जिसमें राष्ट्रीय-भावना की कविताओं का पाठ हो। (घिघियाकर) उसी के लिए....पहले यह बताइए कि आप सब खादी घर के लिए खरीद रहे हैं या नहीं ? हम खादी का प्रचार कर रहे हैं।

सेठ : बहुत अच्छा प्रोग्राम है। खादी के लिए रही बात, सो मैं तो आप जानते हैं प्रायः सुदेशी ही पहनता हूं। फिर आप कहेंगे तो उन दिनों के लिए खादी के कपड़े बनवा लूंगा। वैसे खादी मुझे बहुत पसन्द है, उन दिनों जब महात्माजी का दौरा हुआ था मैं तभी से खद्दर पहनने लगा था। यह तो सरकार के लोगों से मिलने के कारण बदलना पड़ा। अब तो खादी का निश्चय ही समझिए।

लालचन्द : तो मतलब की बात यह है कि इस सब काम के लिए आपको कष्ट देना है।

[दीनू मिठाई लाता है]

सेठ : लीजिए, पहले जलपान कर लीजिए। पानी ला रे, हाथ धुला।

दोनों : आप भी तो लीजिए सेठजी !

सेठ : नहीं मुझे तो क्षमा करें। अभी भीतर से जलपान करके ही चला आ रहा हूं। हां, आज्ञा कीजिए। (दोनों खाते हैं)

लालचन्द : हां तो हमने ५०० रुपये आपके नाम डाले हैं।

नेमिचन्द : अरे तो ५०० रुपये से भी क्या कम होंगे ? सेठजी से मैं तो हजार.....। यही तो हमारे नगर के दानी हैं।

सेठ : पांच सौ तो बहुत है। ही ही ही.....सौ लिख लीजिए, सौ।

लालचन्द : (मुंह में मिठाई भरे हुए) नहीं सेठजी, ५०० रुपये से कम नहीं।

नेमिचन्द : ये अवसर बार-बार नहीं आते हैं। हमारा विश्वास है, जवाहरलालजी भी आएंगे।

सेठ : आप मालिक हैं, दस हजार लिख देंगे तो भी देना पड़ेगा। आप ही तो सरकार हैं ! सब आपका ही तो है। इधर इनकमटैक्स

वाले तंग करते हैं, बाजार वैसे मन्दा है, रोजगार तो रह ही नहीं गया, खर्च बेहद ! सच मानिए लालचन्दजी, पेट भरना मुश्किल है । बस, किसी तरह इज्जत बची रह जाय यही बहुत है, नहीं तो पहले आपने देखा होगा........

लालचन्द : न पाकिस्तान बनता, न हमारे देश की यह दुर्दशा होती । इधर तो पाकिस्तान से इतने आदमियों का आना, उधर अनाज की कमी । क्या किया जाय ?

नेमिचन्द : अरे साहब, हमी से पूछिए क्या हालत है । इतना त्याग किया, जेल गये, मार खाई, दुख सहे, जब कुछ बनने का अवसर आया तो और लोग आगे आ गये । वे मेम्बर बने । जिनके घर में भूँजी भाँग नही थी आज वे मोटरों में दौड़ते हैं, जिनके झोपड़े नहीं थे आज वे कोठियों में रहते हैं ।

लालचन्द : चलो जाने दो, अपने को क्या नेमिचन्दजी ? हमारा काम है सेवा करने का; सो सेवा करते हैं । स्वराज्य तो हमी ने दिलाया है ।

नेमिचन्द : इसमें क्या शक है ? पर नहीं, मैं तो स्पष्ट वक्ता हूँ, लगालेसी नहीं रखता । साफ है, हमने किससे कम त्याग किया है ? मैंने हजारों आदमियों में खड़े होकर व्याख्यान दिये हैं । लोग मान गये कि हाँ है कोई बोलने वाला । पर.....। और तुमसे क्या छिपा है ?

सेठ : सो तो है ही । आपका त्याग किससे कम है ! हम जानते हैं । पर एक बात देखिए (जरा पास आकर) वो वीविंग मिल के शेयर जो आपने खरीदे हैं यदि मिल सकें तो आधे शेयर मुझे भी खरीदवा दें । मैं ले लूंगा ।

नेमिचन्द : क्यों नहीं, आज ही मैं कह दूँगा । यदि आप मेरे शेयर खरीदना चाहें तो वे भी सस्ते दामों पर....पर ।

सेठ । नहीं नहीं....मं चाहता हूँ हम लोग अपने ग्रूप के आदमी लें ताकि मिल के ऊपर हमारा अधिकार हो । सुना है, लालचन्दजी कोठी बनवा रहे हैं ?

लालचन्द : हाँ, अभी तो शुरू ही की है ।

नेमिचन्द : कोठी तो मैं भी एक बनवाना चाहता हूँ ।

सेठ : क्या हर्ज है, आपने क्या कम कष्ट उठाये हैं ?

लालचन्द : हाँ फिर क्या निर्णय किया आपने ? देखिए हम पाँच सौ से (घिघियाकर) कम न लेंगे ।

सेठ : जैसी आपकी मर्जी ! मैं क्या आपसे बाहर हूँ ? पर एक बात है····

नेमिचन्द : कहिए ! हाँ, लिखो पाँच सौ सेठ छीतरमलजी के नाम । चेक दीजियेगा या····?

सेठ : जैसा कहें । रुपया भी हाजिर है ।

लालचन्द : रुपया ठीक रहेगा, क्यों नेमिचन्दजी ?

नेमिचन्द : हाँ, और क्या ? कौन झंझट मोल ले और भुनाने जाय ?

सेठ : मुनीमजी, रामधनीजी ५०० रु० भीतर से ला दो । काकाजी से गुच्छा ले लेना । और आपने हाथ तो धोए ही नहीं । दीनू, हाथ धुला और पान ला । सिगरेट पियेंगे ?

रामधन : जी बहुत अच्छा ! (जाता है)

लालचन्द : हाथ तो धुले-से ही हैं । लाओ, फिर भी धो ही लें !

दीनू : (हाथ धुलाने के बाद) कौन-सी सिगरेट लाऊँ ?

लालचन्द : देख, पाँच सौ पचपन नम्बर की सिगरेट मिले तो एक पैकिट ले आना ।

नेमिचन्द : मेरे लिए तो तू एक सिगार ले आ । बर्मी सिगार कहना । बारह आने की एक आवेगी । क्या बताऊँ, सिगार की आदत पड़ गयी है । बड़े-बड़े आदमियों में मिलना-बैठना होता है । क्या करूँ ? पीता हूँ—पीता क्या हूँ, पीना पड़ता है ।

सेठ : हाँ, क्या हरज है, यह तो है ही । ला जल्दी (दीनू जाता है)

लालचन्द : और सुनाओ सेठजी !

सेठ : क्या सुनाएँ पंडितजी, आपके राज में पिटे जा रहे हैं । न कोई सुनता है न देखता है । किसी ने शिकायत कर दी कि हमने ब्लैक

मार्कीट किया है, सो परसों इनकमटैक्स कमिश्नर ने बुलवाया था। आज भी बुलाया था। मैंने तो कह दिया—साहब, आप माई-बाप हैं। हमारी जिन्दगी कांग्रेस की सेवा करते बीती है। फिर भला हम क्यों ब्लैक मार्कीट करने लगे। बहियाँ माँगी हैं, परसों रात को पुलिस के आदमी आ गये। खैर, वह तो मैंने टाल दिये जैसे-तैसे। नाक में दम है साहब ! इसीलिए प्रार्थना है····

नेमिचन्द : क्या बताएँ इन कलक्टरों, कमिश्नरों के मारे नाक में दम है। भला आप जैसे दानी को तंग करना क्या ठीक है ? अच्छा, आप घबरावें नहीं, मैं उनसे मिलूंगा। विश्वास है मान जाएँगे, नहीं तो ऊपर जाना पड़ेगा !

लालचन्द : एक तरह से देखा जाए तो हममें और उनमें संघर्ष तो चल पड़ा है। जो हम कहते हैं उन्होंने उसे न मानने की कसम खा ली है। हम कहते हैं, अरे भाई, हम लोग घास तो नहीं खाते, आखिर गाँधीजी के मार्ग पर देश को चलाना चाहते हैं। अब वैसी नौकर-शाही नहीं चलेगी। समझे ? पर बड़ी मुश्किल है। हमें तो कोई पूछता ही नहीं।

नेमिचन्द : तो इसमें किसी का एहसान नहीं है। जिन्होंने स्वराज्य दिलाया, स्वतन्त्रता कायम की, वे लोग साधारण नहीं हैं। आज भी कांग्रेस का राज्य है, उसी की हुकूमत है।

सेठ : सो तो है ही, सो तो है ही, तुम जानो, मानना पड़ेगा। हम लोग भी आपके ही सहारे हैं श्रीमान् जी ! हाँ, तो मैं चाहता हूँ, मैं जो स्टेटमेंट भेजूं वह स्वीकार हो जाय। वैसे मैं अपनी तरफ से कोशिश कर रहा हूँ फिर भी·········। मैं आपसे मिलना भी चाहता था इस सम्बन्ध में।

लालचन्द : आपका काम हमारा काम है सेठजी, आप निश्चिन्त रहें, आपको आँच नहीं आ सकती।

सेठ : कृपा है आपकी। आपही के सहारे हम लोग जी रहे हैं और क्या? मैं जाऊँ, देखूँ रुपया क्यों नहीं लाया मुनीम। जरा क्षमा····।

[चला जाता है]

नेमिचन्द : हाँ, हाँ जाइए (लालचन्द से) सेठ ने कमाया जरूर है ब्लैक में।

लालचन्द : कम-से-कम सात-आठ लाख। पर अपने को क्या? आड़े वक्त काम देता है, सहायता मिलती है। पिछले दिनों लोहा इसी से लिया, अब कोठी के लिए जरूरत पड़ेगी तो····

नेमिचन्द : गाँधीजी देश के धनियों की रक्षा आवश्यक मानते थे।

लालचन्द : खैर, गाँधीजी की धनियों की रक्षा का मतलब दूसरा था। जो भी हो। कांग्रेस का संगठन दृढ़ करने के लिए साधारण लोग तो रुपया देने से रहे। रुपया हमको इन्हीं से लेना पड़ेगा, इसलिए इनकी रक्षा भी करनी आवश्यक है। मेरी सलाह है, मैं भी एक मोटर खरीद लूँ। अब उसके बिना काम नहीं चलता। आपने तो खरीद ली है।

नेमिचन्द : जरूर, यही क्या कम है कि सेठ में इतनी देश-भक्ति है और आवश्यकता पड़ने पर भरपूर सहायता करता है। हमेशा आड़े समय में सहायता के लिए तैयार रहता है।

[सेठ का आना]

सेठ : लीजिए, देर हो गयी, क्षमा करें। (दोनों व्यक्ति नोट जेब में डालकर नमस्ते कहते हुए चल देते हैं। सेठ उनको जाता हुआ देखता रहता है! चले जाने के बाद) ये हैं कांग्रेस के लोग! मेरे समान स्वार्थी और अर्थ-लोलुप! इनके भी वैसे ही ठाट हैं, मकान, कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, फिर मजा यह कि कुछ भी नहीं करते। व्यापार कोई नहीं करते। तो क्या रुपया आकाश से फूट पड़ता है? अभी-अभी नेमिचन्द ने दस हजार के शेयर खरीदे हैं। और भी हिम्मत है! मैं ब्लैक मार्कीट करता हूँ, ये सहायता

देते हैं। ये स्वयं भी उतने ही डूबे हुए हैं जितना मैं। फिर मैं क्यों मानूं कि मैं ही पाप करता हूँ? पाप, पाप कौन नहीं करता? कौन नहीं करता? मैं पाप करता हूँ तो धर्म भी करता हूँ, दान भी देता हूँ, मन्दिर में पूजा भी करता हूँ, ब्राह्मणों को भोजन भी कराता हूँ, गरीबों को अन्न भी बँटवा देता हूँ, मैं पशु-पक्षियों की सेवा करता हूँ। उनके लिए मैंने अस्पताल खोल रखा है। उनकी बीमारी दूर होती है, क्या यह सब पाप धो डालने के उपाय नहीं हैं? (टहलता रहता है) इनकमटैक्स वालों को ठीक करना होगा। वे अब पुराने हिसाब की चिन्दी भी नहीं पा सकते। यह नेमिचन्द और लालचन्द को दिया गया रुपया ही मुझे बचाएगा। मैं आज ही खद्दर खरीदकर कपड़े बनवा लूंगा। मैंने गलती की जो अब तक खद्दर के कपड़े नहीं पहने। पहनने होंगे, यही युग का, समय का तकाजा है—जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे। दीनू! दीनू!

दीनू : हाजिर सेठजी!

सेठ : बड़े मुनीमजी और डॉक्टर कहाँ गये दीनू?

दीनू : बड़े मुनीमजी के साथ डॉक्टर को काका साहब ने बाहर भेजा है सेठजी!

सेठ : काका साहब ने....हाँ, ठीक है, जा! (अपने आप) काका साहब ने भेजा है....ठीक है। यदि निशाना लक्ष्य पर बैठ गया....सारा मामला इन क्लर्कों के हाथों में ही होता है। अफ़सर तो सरकार की प्रेस्टिज-प्रकाश का बल्ब है जो अपनी पावर के अनुसार चमकता है। कोई पाँच का, कोई दस का और कोई पच्चीस का। यदि उस बल्ब के ऊपर इकन्नी रखकर तार से जोड़ दिया जाए तो दूर तक अँधेरा फैल जाता है। बिजली फ्यूज हो जाती है। इसी तरह रुपये का जोड़ दूर तक प्रेस्टिज के प्रकाश को धुंधला

कर देता है। चाहिए रुपये को वहाँ जोड़ने की योग्यता। (टहलता हुआ) लोग कहते हैं, हम लोग ब्लैक मार्कीट करते हैं, हम सरकार के शत्रु हैं, देश के दुश्मन हैं। गरीबों का खून चूसकर मोटे हुए हैं। कितनी गलत बात है! क्या हमने गरीबी पैदा की है? जिसमें योग्यता हो वह आगे आवे। हममें नहीं गरीब हो जाते, उनके दिवाले निकल जाते? फिर वे अपनी योग्यता चतुराई से बड़े बन जाते हों, झूठ हैं, सब झूठ है। रुपये को पकड़ने से रुपया मिलता है। उसके लिए कितने हाथ-पैर मारने पड़ते हैं, यह कौन जानता है? कितने दिनों से मैं परेशान हूँ? न रात को नींद आती है न दिन को चैन! कितनी परेशानी है। रुपया कमाना ही कठिन नहीं है उसको लुटेरों, डाकुओं, चोरों और सरकारी पुर्जों से बचाकर रखना भी एक कठिन काम है। (टहलते हुए खड़ा होकर देखता है) कौन हैं, कौन हैं ये लोग! एक लड़की, एक लड़का और यह आदमी भी उनके साथ है? कौन हैं, आप क्या चाहते हैं? अरे पुलिस के दरोगा भी हैं! आइए, दरोगाजी साहब बैठिए।

व्यक्ति : सेठजी, दया कीजिए। कुछ दिन और ठहर जाइए। हम आपका सब किराया चुका देंगे, मकान खाली कर देंगे।

सेठ : क्या तुम मेरे किरायेदार हो?

व्यक्ति : जी, ये दरोगा हमारा असबाब मकान बाहर निकालकर फेंक रहे हैं।

सेठ : तो ठीक ही कर रहे हैं। इधर एक साल से तुमने किराया भी तो नहीं दिया है।

व्यक्ति : वह तो आपने ही किराया नहीं लिया तो हम क्या करते? खैर मेरी प्रार्थना है कि आप कुछ दिन और ठहर जाएँ तो मैं किराया दे दूँगा।

सेठ : (क्रोध से) मैं किराया नहीं लूंगा। आप पिचहत्तर देते हैं, मैं सौ लूंगा। यही मेरी-आपकी लड़ाई है। इसलिए यह सब झगड़ा हुआ है।

व्यक्ति : देखिए, सौ देने की मेरी शक्ति नहीं है ।

सेठ : तो आप मकान छोड़ दीजिए । मेरा मकान अब डेढ़ सौ पर उठेगा ।

व्यक्ति : यह तो ज्यादती है सेठजी !

सेठ : कचहरी ने फैसला कर दिया है । आपको जो कुछ करना था, कर चुके । जाइए, मेरा मकान खाली कर दीजिए । मैंने ही पुलिस से कहा है । मैं और नहीं ठहर सकता ।

व्यक्ति : मैं मानता हूँ सरकारी न्याय आपके पक्ष में है । किन्तु देखिए, मकान तो मिल नहीं रहा, हम लोग कहाँ जाएँ ?

सेठ : तो मैंने क्या ठेका ले रखा है संसार का ? क्यों दरोगाजी ?

दरोगा : मैं अभी आया सेठजी, आप फैसला कर लीजिए । (जाता है)

व्यक्ति : मैं मनुष्यता के नाते आपसे प्रार्थना करता हूँ । मुझे कुछ दिन की मोहलत दीजिए । मैं आपका मकान खाली कर दूँगा ।

सेठ : (दरोगा से) जी बहुत अच्छा । आप हो आइए ! (व्यक्ति से) आपको सरकार ने पिछले चार मास से मकान खाली करने की सूचना दे रखी है !

व्यक्ति : मैं मानता हूँ । मैंने भी मकान ढूंढ़ने में कोई कसर नहीं रखी ।

सेठ : फिर आगे मकान मिल ही जाएगा, इसका क्या प्रमाण है ?

व्यक्ति : लेकिन इस तरह तो मैं कहीं का न रहूँगा । मेरे बच्चे हैं, बीबी है, मैं भी आखिर प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ । इसलिए आपसे कुछ दिन ठहर जाने की प्रार्थना है ।

सेठ : सुनिए श्रीमान्, मैं ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने दे सकता । अब तो मेरा मकान खाली करना ही पड़ेगा । या फिर·········या फिर·········

व्यक्ति : या फिर क्या कहिए ? जो कुछ हो सकेगा, मैं प्रयत्न करूँगा । मैं बहुत दुखी हूँ सेठजी, आप दानी हैं; नगर में आपका नाम है । आप तो पशु-पक्षियों पर भी दया करते हैं, फिर मैं तो मनुष्य हूँ ।

सेठ : मैं जानता हूँ दया कहाँ करनी चाहिए। नहीं, कुछ नहीं जाइए, आप मकान खाली कर दीजिए। मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। (बच्चे रोने लगते हैं, व्यक्ति दुःखाभिभूत होकर चुपचाप खड़ा रहता है।)

व्यक्ति : मैं एक सप्ताह का समय चाहता हूँ। उस समय तक खाली कर दूँगा।

सेठ : दीनू, हटाओ इन्हें। मुझे फुरसत नहीं है। (बच्चे और जोर से रोने लगते हैं, व्यक्ति के चेहरे पर निराशा की रेखाएँ उभरती हैं।) जाइए साहब, थानेदार साहब आ रहे हैं। अच्छा है उनके पहुँचने के पहले आप मेरा मकान छोड़ दें।

व्यक्ति : माना मैं किरायेदार हूँ; पर हूँ तो मनुष्य ! मेरे भी बच्चे हैं, पत्नी है। ऐसी अवस्था में आप ही सोचिए मैं इतनी जल्दी कहाँ जा सकता हूँ ? (हाथ जोड़कर) कृपा करें।

सेठ : (उसी धुन में) आप भी अजीब आदमी हैं ! मैं कह रहा हूँ मेरा सिर न खाओ। जाओ, मैं मकान में आपको नहीं रहने दे सकता।

व्यक्ति : तो आप किसी प्रकार मुझ पर कुछ दिनों के लिए भी दया नहीं दिखा सकते ? (गिड़गिड़ाता है, बच्चे रोने लगते हैं। सेठ एक बार बच्चों को देखता है।)

सेठ : नहीं, नहीं दिखा सकता दया, यह नहीं हो सकता। छह महीने का किराया दे सकते हैं अभी आप ?

व्यक्ति : मेरे पास छह मास का किराया नहीं है।

सेठ : आपकी पत्नी का गहना तो है। वही ले आइए।

व्यक्ति : सेठजी उसमें से बहुत-सा तो पिछले दिनों पत्नी-बच्चों की बीमारी में खर्च हो चुका है। इधर मैं कुछ दिनों से बेकार भी हूँ। नौकरी की तलाश में हूँ.........

सेठ : मैं ऐसे बेकारों को मकान में नहीं रहने दे सकता ! मैं जानता हूँ तुम लोग मक्कार हो ।

व्यक्ति : (भुनभुनाकर, विवशता से) मैं भी प्रतिष्ठित आदमी हूँ । दया कीजिए । मेरी—आपकी किराया बढ़ाने पर ही तो लड़ाई हुई है । फिर मैं जितना किराया ठहरा था उतना तो देता ही रहता हूँ । आपने ही उतना किराया नहीं लिया ।

सेठ : (कोई उत्तर न पाकर) बहुत बकवास मत करो । जाओ । यदि पुलिस द्वारा मकान से बाहर सामान फेंक दिये जाने का डर हो तो अभी जाकर खाली कर दो ।

व्यक्ति : ऐसे में कहाँ जाऊँ सेठजी ?

सेठ : जहाँ सींग समाये, जहाँ जगह मिले, मैं क्या जानूँ ? मेरा सिर न खाओ ।

[काका सेठ आता है]

चाँदीराम : छीतर, हरगिज इस बेईमान का कहना न मानियो । अब मकान सवा सौ में उठेगा (राम-राम-राम-राम) तुम्हें कोई हयाशरम नहीं है ? तुम्हारे साथ दया करना फिजूल है ।

व्यक्ति : सेठजी मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ । थोड़े दिनों की मोहलत दे दें ।

दोनों : नहीं, नहीं हो सकता । (काका सेठ कड़ककर) जाओ मकान खाली करो । (राम-राम-राम-राम)

सेठ : तुम चाहे लाख कहो, मकान मैं नहीं दे सकता । मैं अभी थानेदार को टेलीफोन करके दरोगा को बुलाता हूँ कि पुलिस की सहायता से मकान खाली कराओ ।

[व्यक्ति विवशता और भविष्य के अन्धकार से नीचे देखने लगता है । बच्चे बाप की अवस्था देख और भी जोर से रोने लगते हैं । सेठ चिल्लाता है ।]

क्या शोर मचा रक्खा है ? जाता नहीं । (टेलीफोन उठाता है ।

डॉक्टर, बड़ा मुनीम तथा इनकमटैक्स का एक अफसर प्रवेश करते हैं। सेठ देखता है, वह व्यक्ति रामचन्द्र अफसर से बड़े तपाक से मिल रहा है। अफसर बच्चों के सिर पर हाथ फेर रहा है और रामचन्द्र उससे टूटे-फूटे स्वर में कुछ कहने को उद्यत'''')

बड़ा मुनीम : क्या ये आपके कोई''''

अफसर : ये मेरे मित्र रिश्तेदार''''राम''''

बड़ा मुनीम : कोई बात नहीं, आप मकान में ठहरिए रामचन्द्रजी, कोई बात नहीं। मैं सेठजी से''''

सेठ : **(टेलीफोन जैसे का तैसा छोड़कर)** आइए-आइए, जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। रामचन्द्रजी, कोई बात नहीं। खुशी से मकान में रहिए। मैं अभी टेलीफोन पर थानेदार से कहे देता हूँ कि मकान खाली कराने की जरूरत नहीं है। आइए, आप लोग यहाँ आइए। **(अपने-आप कुरसी ठीक करने लगता है। टेलीफोन उठाकर)** मैं सेठ छीतरमल बोल रहा हूँ, जी अभी मकान खाली न होगा। कष्ट न करें। **(रिसीवर रख देता है।)**

चाँदीराम : अरे दीनू, जाकर बाजार से बढ़िया-सी मिठाई तो ला।

सेठ : देख दीनू, बंगाली मिठाई लाना। जा जल्दी **(बच्चे सिसकते हुए चुप हो जाते हैं। रामचन्द्र स्तब्ध। बाकी लोग जैसे-के-तैसे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जाकर कुर्सियों पर जम जाते हैं। काका सेठ जोर-जोर से गोमुखी के भीतर माला फेरने लगता है। सेठ उन बच्चों के सिर पर हाथ फेरता है।)** कोई बात नहीं। अपना ही घर है। कोई बात नहीं। जा, जल्दी जा दीनू! माफ करना, गलती हो गयी। जा दीनू गया कि नहीं? रे ए ए''''!

(पर्दा गिरता है)

●

विषकन्या

•

गोविन्दबल्लभ पन्त

पात्र

चन्द्रविजय : विजेता राजा

अपराजिता : विजित पक्ष की कन्या

पहला सेनापति
दूसरा सेनापति } : चन्द्रविजय के सेनापति

एक सैनिक

स्थान : पराजित शत्रु से छीने गये दुर्ग के प्रासाद में एक सुसज्जित शयनागार।

समय : सन्ध्या।

खुले वातायन के पास एक सुन्दर शैय्या बिछी हुई है और एक पिंजरे में बन्द एक कपोत लटक रहा है। महाराज चन्द्रविजय के दो सेनापति प्रवेश करते हैं।

प० सेना० : क्यों मित्र सेनापति ! शत्रु के इस दुर्ग को जीत लेने में हमें कई महीने लगे हैं सही, पर यह विजय कहीं बहुमूल्य है।

दू० सेना० : लेकिन आश्चर्य इसी बात का है, विजित महाराज का पता न तो युद्ध के आहत और मृतकों में है, न बन्दियों में ही उनकी गिनती हुई है।

प० सेना० : हो न हो वे किसी गुप्त सुरंग से सुरक्षा के स्थान को निकल गये।

दू० सेना० : और राजा का अन्तःपुर ?

प० सेना० : वह क्या हमारे स्वागत के लिए यहाँ रख दिया जाता ? वे भी सब भाग गये होंगे। मेरी समझ में हमारे महाराज चन्द्रविजय के विश्राम के लिए यह प्रकोष्ठ सबसे अधिक उपयुक्त है।

दू० सेना० : लेकिन कुछ दिन बड़ी सावधानी से चौकसी रखनी पड़ेगी।

प० सेना० : ऐसा क्यों कहते हो ? हमने दुर्ग का एक-एक कोना छान डाला है, एक-एक ईंट बजाकर सुन ली है। कहीं कोई सन्देह के आधार नहीं मिले हैं।

दू० सेना० : ये वज्रकूट-वासी, विश्वकर्मा का निर्माण बताकर अपने स्थापत्य की महिमा जताते हैं। ये घूम जाने वाले स्तम्भ, नीचे धँस जाने वाले धरातल और बीच से विभक्त हो जाने वाले प्राचीर हैं तो बड़े आश्चर्यजनक ! तुम जिन भू-भागों को प्रांगण समझे हुए हो, वे गुप्त भवनों की छतें भी हो सकती हैं।

प॰ सेना॰ : छिपकर रहने के लिए वायु का प्रबन्ध हो सकता है, जल के भी कूप खुद सकते हैं। लेकिन इन सबके ऊपर जिस अनाज के दाने में मनुष्य की काया और कामना टिकी है, वह कहाँ से आयेगा ? छः महीने से हमने उनका तमाम बाहरी संसर्ग काटकर रख दिया है। फिर क्यों तुम्हारे ऐसी सम्भावना जागती है ?

दू॰ सेना॰ : नीचे ही नीचे सुरंगों के मार्गों से अवश्य ही ग्रामों के साथ उन्होंने अपना सम्बन्ध बना रखा है।

प॰ सेना॰ : अगर ऐसा होता तो वे इतनी शीघ्र आत्मसमर्पण न कर सकते। आहत और मृतकों में महाराज को न मिलने की क्या चिन्ता ? दुर्ग की किसी टूटी दीवार के नीचे उनका समाधिस्थ हो जाना कोई असम्भव नहीं है।

(दूसरा सेनापति एकाएक कुछ चौंकता है।)

प॰ सेना॰ : क्यों ? क्यों ? चौंकते क्यों हो ? क्या हो गया ?

दू॰ सेना॰ : मैंने किसी की साँस का शब्द सुना है।

प॰ सेना॰ : क्या विश्वकर्मा के बनाये किसी गुप्त और अदृश्य कक्ष में ? लेकिन यह तो बताओ वह साँस कैसी, ठण्डी या गरम ?

दू॰ सेना॰ : आशय तुम्हारा ?

प॰ सेना॰ : सेनापतिजी, विरह की साँस ठण्डी और मिलन की गरम होती है। जो ठण्डी होती है वही लम्बी भी। अब तो बताओ कैसी है वह ?

दू॰ सेना॰ : (ध्यान से सुनता है।) ठहरो, सुनने दो। (फिर सुनता है।) है, अवश्य है और वह ठण्डी साँस है।

प॰ सेना॰ : एक बात और बताओ, नर की है या नारी की ?

दू॰ सेना॰ : हुं ! शब्द का भेद पाया जा सकता है, साँस का कैसे ?

प॰ सेना॰ : अजी महोदय, साँस ही पर तो शब्द ठहरा हुआ है।

सैनिक : (नेपथ्य में) महाराज चन्द्रविजय की जय !

दू० सेना० : महाराज तो स्वयं ही इधर आ गये।

चन्द्रविजय : (आकर) मैं तुम दोनों सेनापतियों की खोज में हूँ।

प० सेना० : और महाराज, हम आपके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान ढूंढ़ रहे हैं।

दू० सेना० : यह कक्ष सर्वथा आपके योग्य है, परन्तु....

चन्द्रविजय : और तुमने तो इसे विलकुल परिपूर्ण भी कर दिया है। खाने-पीने की वस्तुएँ ही नहीं, मनोरंजन के लिए वाद्य-यन्त्र भी लाकर रख दिये।

दू० सेना० : हमने इसमें कुछ नहीं किया महाराज, इसीलिए तो मैं कहता हूँ....

प० सेना० : तुम क्या कहते हो? यह कक्ष ही कहता है कि शत्रु-पक्ष को इसका कुछ भी आभास नहीं था कि उनके दुर्ग का इतनी शीघ्र पतन हो जायगा।

चन्द्रविजय : भगवान का यह विचित्र विधान है। दास-दासियों ने यह शैया न जाने किसके लिए बिछाई और इसमें विश्राम करने को आ गया कौन? (खड्ग एक कोने में रखता है और कमरे के कटिबन्ध पर हाथ रखता है।)

दू० सेना० : (चन्द्रविजय का कटिबन्ध और कवच खोलने में सहायता देता है।) पर महाराज........

चन्द्रविजय : तुम्हारे भीतर विश्वास की मात्रा बहुत कम है, सेनापति! ऐसा भी क्यों? दिन-भर के युद्ध से मैं बहुत थक गया हूँ। तुरन्त ही मेरे लिए विश्राम आवश्यक है। सच पूछो, तो यह शयनागार इस समय सबसे बड़ा वरदान है।

दू० सेना० : महाराज, मेरे कहने का आशय यही है, शत्रु के इस दुर्ग को जीत लेने पर अगर हम पहली निशाओं में निद्रा के बिलकुल वशीभूत हो गये, तो हम धोखा भी खा सकते हैं।

प० सेना० : तुम शत्रु की बात कहते हो, हमें धोखा देने में क्या हमारी इन्द्रियाँ

कम प्रवीण हैं ? महाराज को विश्राम करने दो, सेनापति ! उनकी रक्षा के लिए हम और हमारे अधीन इतनी बड़ी सेना क्या पर्याप्त नहीं है ? (दोनों मिलकर चन्द्रविजय के आयुध और कवच खोलकर यथास्थान रखते हैं ।)

चन्द्रविजय : (शैया पर जाता है ।) हाँ सेनापति, जो कुछ है उस पर कोई संशय न करो, जो नहीं है उसका आयोजन होना चाहिए ।

प० सेना० : अगर एक गायिका हो तो इन वाद्य-यन्त्रों में प्राण प्रस्फुटित हो जाते और आपको बिना प्रयास ही निद्रा आ जाती ।

चन्द्रविजय : हँ-हँ-हँ ! सेनापति, दिन-भर के कर्म की श्रान्ति संगीत से सम्मोहक है !

दू० सेना० : परन्तु····(कोने में से खड्ग उठाकर चन्द्रविजय के सिरहाने रख देता है ।)

प० सेना० : दीपक में सब कुछ है, केवल ज्वाला अपेक्षित है । हम अभी उसे भेजते हैं आप बेखटके सोइए, महाराज ! आपकी सेवा में पुराने और पक्के प्रहरी नियुक्त हैं । ये द्वार बन्द कर दें ?

दू० सेना० : नहीं कोई आवश्यकता नहीं है ।

चन्द्रविजय : हाँ ऐसी ही बात है ।

[दोनों सेनापति जाते हैं । चन्द्रविजय सावधानी से सिर का मुकुट खोलकर शैया में ही रख देता है । वह ज्यों ही सोने लगता है, त्यों ही एक ध्वनि पर उसका ध्यान खिंच जाता है । वह एकाएक उठ बैठता है ।]

चन्द्रविजय : हैं, अवश्य ही कोई है । कौन हो तुम ? (फिर कुछ देर ध्यान लगाकर सुनता है ।) निस्सन्देह ! मेरे अतिरिक्त और भी कोई तुम इस प्रकोष्ठ में साँस ले रहे हो ? सामने क्यों नहीं आते ? किसी भी भावना में तुम्हारा स्वागत है । हो तो वैसा कहो, नहीं तो मैं अपने उतारे हुए आयुध फिर उठा लूंगा । (फिर कुछ प्रतीक्षा कर

सुनता है। शैया छोड़कर भूमि पर खड़ा होता है। कक्ष में इधर-उधर देखता है।) कक्ष के भीतर नहीं जान पड़ता बाहर कहीं हो क्या ? (द्वार पर जाकर दाएँ बाएँ झाँकता है।) नहीं, प्रहरी तो बहुत दूर खड़े हैं। उनका साँस या बोल भी कानों को अगम्य हैं। (फिर भीतर आता है) तो क्या यह ध्वनि मेरे भीतर का ही जागरण है ? हूँऽऽ ! अत्यधिक श्रान्ति इसका एक कारण हो सकती है और कभी-कभी मनुष्य की कामनाएँ अपने आप बोल उठती हैं। (एकाएक फिर कुछ सुनकर) नहीं ! (बड़े निश्चय के साथ शैया की चादर उठाकर उनके नीचे देखता है और चकराकर पूछता है) हैं ! कौन हो तुम यहाँ पर छिपी और सिमटी हुई ? इतनी देर से मैं बड़बड़ा रहा हूँ और प्रतिमा के कानों से सुन रही हो। तुम्हें तुरन्त ही मेरा भ्रम मिटा देना था। कौन हो, अब तो उत्तर दो ?

अपराजिता : पहले ये द्वार ढंक दीजिए।

चन्द्रविजय : क्यों भय कैसा ?

अपराजिता : आपका परिचय पा चुकी हूँ मैं। मैं भी राजकुल की रमणी हूँ। अपनी बात भीड़ में अनावृत नहीं कर सकती।

चन्द्रविजय : ठीक है, ऐसा ही होना चाहिए। (द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा देता है।)

अपराजिता : शैय्या के नीचे से अपने वस्त्रालंकार सँभालती हुई बाहर निकल उठ खड़ी होती है और सिर नीचा कर लेती है। अपराजिता मेरा नाम है। पिता के साथ पराजित हो जाने पर नाम की सारी महिमा जाती रही। ज्योतिषी की गणना पर मुझे क्यों न सन्देह हो ? कैसा नाम रख दिया उन्होंने मेरा ?

चन्द्रविजय : कोई चिन्ता न करो। तुम अविवाहित जान पड़ती हो ?

(अपराजिता और भी सिर नीचा कर चुप रहती है।)

चन्द्रविजय : तुम्हें ज्ञात होगा, महाराज कहाँ गये ? उनके अन्तःपुर का और तो कोई भी हमें नहीं दिखायी दिया। केवल तुम ही अकेली यहाँ कैसे रह गयी ?

अपराजिता : इसे मेरा दुर्भाग्य ही समझिए,महाराज ! भोजन के अभाव में पिता को जब दुर्ग-रक्षा की अन्तिम आशा छोड़ देनी पड़ी, तो कल आधी रात में उन्होंने परिवार-सहित दुर्ग का परित्याग कर देने का निश्चय किया। हतभागिनी मैं ही अकेली यहाँ छूट गयी ?

चन्द्रविजय : कभी-कभी निद्रा हमारी बड़ी बैरिन हो जाती हैं।

अपराजिता : नहीं महाराज, ऐसी तामसी रात में नींद ही किसे आती है? एक रस्सी के सहारे सब लोग दुर्ग छोड़कर उतर गये। मैं स्वभाव से ही बड़ी भयग्रस्ता हूँ। बराबर अपनी बारी को टालती रही। सब-के-सब उतर गये, तब भी मेरे साहस जमा नहीं हुआ। सबके अन्त में अचानक वह रस्सी कई दासियों के बोझ से टूट गयी, तब जाकर मेरे उत्साह हुआ ! फिर क्या होता ?

चन्द्रविजय : इसके लिए तुम्हें कोई चिन्ता न होनी चाहिये। घोर दुःख की कालिमा में हमें बड़ा दिव्य-प्रकाश प्राप्त हो जाता है। अपने मान और सुख को यहाँ सुरक्षित समझो। तुम्हारे पिता के साथ मेरी शत्रुता हो सकती है, तुम्हारे साथ उसके होने का कोई कारण नहीं दिखायी देता।

अपराजिता : दुर्ग की दीवार से नीचे कूद जाने के लिए माता-पिता पुकारते ही रहे। जो रस्सी के सहारे नहीं उतर सका, उसे कूद जाने की शक्ति कहाँ से मिलती ? ये पापी प्राण बड़े प्रिय हो गये !

चन्द्रविजय : नहीं अपराजिते, ऐसा न कहो। यह अप्रतिम रूप-ज्योति लेकर बिना संसार का अनुभव किये आत्मघात, कोई अर्थ नहीं रखता। तुम घोर पातक से बच गयी, तुमने ठीक ही किया, जो दुर्ग की दीवार को मृत्यु की फाँद नहीं बनाया। फिर मरण क्या सदैव ही माँगने से मिल जाता है ? अगर किसी हाथ-पैर की विच्युति

हो जाती, तो कैसे तुम्हारी यह सुकुमारता, उस अंगहीनता के भार को जीवन-भर ठेलती रहती ? पिता के निर्णय में मोह था और तुम्हारे निश्चय में मुझे बुद्धिवादिता दिखायी देती है; यद्यपि तुम्हारी आयु अभी कच्ची ही है।

अपराजिता : हूँ ऽ हूँ ऽऽ (फफक-फफककर रोने लगती है।)

चन्द्रविजय : तुम्हारे रोने का कोई भी तो कारण नहीं देखता। कदाचित् माता-पिता का बिछोह........

अपराजिता : मैं आज तक कभी उनसे एक क्षण के लिए भी बिलग नहीं हुई थी।

चन्द्रविजय : एक ही दशा से प्रकृति की शत्रुता है। अपराजिते, तुम पराये घर की सम्पत्ति हो। एक दिन सगे-सम्बन्धियों से क्या तुम्हारा विच्छेद विवाह के हाथों से नहीं लिखा गया है ?—बड़ी कठोरता से पाषाण की गहरी रेखाओं में ? इसलिए चुप रहो। अगर तुम किसी अन्यायी और आततायी के हाथों में पड़ गयी होती, तभी दुख होता। जो भी कहोगी, वही तुम्हारे लिए प्रस्तुत किया जायेगा। कौन इस स्वर्गीय रूपांगना की उपेक्षा कर सकेगा ?

[बाहर से कोई धीरे-धीरे द्वार खटखटाता है। अपराजिता फिर शैया के नीचे छिपने को बढ़ती है।]

चन्द्रविजय : नहीं, हमें क्यों किसी का भय हो ? (द्वार की ओर जाता है।)

[अपराजिता एक कोने में खड़ी हो जाती है, फिर कोई द्वार खटखटाता है।]

चन्द्रविजय : कौन हो तुम ?

सैनिक : (बाहर से) महाराज, अपराध क्षमा हो। वेला हो चुकी। मैं सन्ध्या के दीपक के लिए प्रकाश लेकर आया हूँ। दोनों सेनापतियों ने आपके लिए माथा नवाया है।

चन्द्रविजय : ठहरो, प्रहरी ! इस नवीन अधिकृत दुर्ग में बड़े विश्वास के साथ

मुक्तद्वार होकर सो जाना बुद्धिमानी नहीं है। मैं खोलता हूँ उसे। (द्वार का थोड़ा-सा भाग खोलकर) लाओ, मुझे दे दो दीपक। (सैनिक के हाथ से दीपक लेकर फिर द्वार ढंक देता है। दीपक लेकर अपराजिता की ओर बढ़ता है।) लो।

चन्द्रविजय : धन्य ! आज की यह सन्ध्या कितनी मधुर हो उठी ! मेरे और तुम्हारे प्रथम स्पर्श के बीच में कैसी पवित्र कान्ति से यह दीपक प्रज्ज्वलित हो उठा ? यह दिव्य प्रतीक ! एक ओर अग्नि की साक्षी रखता है और दूसरी ओर सूर्य की तेजस्विता ! क्यों न हम दोनों इसे प्रणाम करें। (दीपक को हाथ जोड़ता है।)

[अपराजिता बड़े संकोच के भाव से एक हाथ से अपना मुख ढंक, दूसरा दीपक-युक्त हाथ सिर के ऊपर उठा लेती है।]

चन्द्रविजय : सौम्ये ! यह बड़ी मनोहारिणी मुद्रा तुमने प्रकट की है। चाहता तो था, इसी नृत्य की माधुरी-भरी भंगिमा में तुम निरन्तर खड़ी रहती—एक सुवर्ण-प्रतिमा की भाँति, लेकिन पहले ही दर्शन का यह स्वार्थ बहुत दिन तक तुम्हारे भुलाये न भूलेगा। इसे दीपाधार में रख दो। जिस तरह तुमने मेरे मानस का अन्धकार दूर कर दिया, यह हमारे इस कक्ष को ज्योतित कर दे।

[अपराजिता कक्ष के दीपक को जलाकर उस दीपक को भी दीपाधार पर रख देती है।]

चन्द्रविजय : अद्भुत ! अनुपम ! तुम्हारे पिता के इस दुर्ग का विजेता यह चन्द्रविजय इस दुर्ग के सामने पराजित हो गया। अपराजिते ! तुम्हारे नाम की सार्थकता अक्षुण्ण ही रह गयी। तुम्हें पिता के निर्णय का अभिमान न खोना चाहिए। सुन्दरी, क्या सेवा करूँ तुम्हारी ?

अपराजिता : मुझे मेरे पिता के पास न पहुँचा देंगे आप ? उधर वे मेरे लिए चिन्तित, और इधर मैं उनके लिए व्याकुल !

चन्द्रविजय : हमारी दृष्टि के आगे के वे अपने सभी पदांक मिटाते चले गये हैं। यह कैसा असम्भाव्य कर्तव्य तुमने मेरे आगे रख दिया। मैं कहाँ तुम्हें उनके पास पहुँचा दूँ ? तुम्हें विधाता के इस प्रबन्ध का विश्वास करना चाहिए। हमारा अनुराग तुम्हारे किसी भी अपने के विराग का कारण न होगा।

अपराजिता : (फिर रोने लगती है।) हूँऽ ऊँऽ ऊँऽ !

चन्द्रविजय : तुमने भोजन नहीं किया होगा। चिन्ता मनुष्य की बड़ी कठोर आहुति है। वह स्वयं नहीं पचती और हाड़-मांस को पचा देती है। प्रभु की कृपा से अब तुम निश्चिन्त हो, अब अवश्य तुम्हारी भूख जाग पड़ी होगी। कहीं जाने की भी आवश्यकता नहीं।

[अपराजिता चुप रहती है।]

चन्द्रविजय : और यदि तुम्हें हमारी पाकशाला का स्वाद इष्ट है, तो वह भी प्रस्तुत हो रही है। मैं सैनिक को भेजकर अभी मँगा दूँगा।

अपराजिता : नहीं-नहीं, महाराज !

चन्द्रविजय : तुम्हारे संकोच की रक्षा के लिए तुम्हारे नाम या व्यक्तित्व का उल्लेख न किया जायगा। मुझे भी भूख लगी है।

अपराजिता : आप अपने अभाव की पूर्ति करें, मेरा जो अच्छा नहीं है।

चन्द्रविजय : तो इस शय्या पर विश्राम करो।

अपराजिता : नहीं।

चन्द्रविजय : यह प्रकोष्ठ किसका है ?

अपराजिता : मेरा। मैं महाराज की एकमात्र कन्या हूँ। उनके स्नेह की ही अकेली अधिकारिणी नहीं उनके राज्य और सम्पदा की भी।

चन्द्रविजय : उनकी यह पराजय केवल दिखावे की है। लौट-फिरकर यह राज्य

फिर तुम्हारे ही अधिकार में आ गया—इतना ही नहीं, साथ में मेरा राज्य भी तो।

अपराजिता : नहीं, महाराज।

चन्द्रविजय : क्यों ? क्या उनका विचार तुम्हें इस राज्य का सिंहासन सौंपकर चिरकुमारी ही रख देने का है ? बलिहारी इस न्याय की ! अपने हृदय के सिंहासन को शून्य और रिक्त रखकर तुम किसी सिंहासन की पूर्ति न कर सकोगी, सुन्दरी ! यह अभिषेक नहीं अभिशाप है। मेरी बात पर विचार करो—इसी से तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा। मुझे अपना हाथ पकड़ लेने दो। (उसका हाथ पकड़ने को बढ़ाता है।)

अपराजिता : नहीं, इसके लिए मुझे माता-पिता की अनुमति चाहिए।

चन्द्रविजय : पहली आवश्यकता तुम्हारी रुचि है, उनकी अनुमती उसी का अनुसरण करेगी।

अपराजिता : यह कन्या की दुःशीलता होगी।

चन्द्रविजय : कभी-कभी हमारी ऊपरी विनय,पाखण्ड से भी निकृष्ट हो जाती है।

अपराजिता : मुझे अपने माता-पिता की खोज के लिए छोड़ दीजिए।

चन्द्रविजय : इस कक्ष में वन्दी तुम नहीं, मैं हूँ। यह कक्ष तुम्हारा है और तुम्हारी ही आज्ञा पाकर इस लोहे की शृंखला से मैंने इन काठ के कपाटों को एक किया है। तुम द्वार खोलकर जहाँ चाहो, जा सकती हो। हमारे बीच में कोई बन्धन या वचन न होगा।

अपराजिता : (द्वार तक बढ़ती है, शृङ्खला पर हाथ रखती है, पर खोल नहीं सकती। लौट आती हैं।) लेकिन कहाँ ? किधर जाऊँ ? (असहाय होकर चन्द्रविजय की ओर बढ़ती है।) आप देंगे वचन ?

चन्द्रविजय : हाँ, दूँगा।

अपराजिता : मैं आपकी शरण हूँ। मुझ पर दया कीजिए। (चन्द्रविजय के पैरों पर गिरती है।)

चन्द्रविजय : ऐसी क्या आवश्यकता है ? मैं तुम्हें अपने हृदय की अधिष्ठात्री बनाकर अपना सब-कुछ तुम्हारे चरणों में न्यौछावर कर दूँगा। (उसका हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठा लेता है।)

अपराजिता : (हाथ छुड़ाकर अलग हो जाती है।) यह क्या किया तुमने ?

चन्द्रविजय : जब तुमने अपनी सारी सत्ता मेरे चरणों पर रख दी, तो क्या तुम्हें अपनी ठोकर बनाता ? नहीं-नहीं, तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हें अपने हृदय का हार बनाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग हो नहीं।

अपराजिता : राजन्, आपके ये वचन ?

चन्द्रविजय : कर्म के साथ इनकी सन्धि के लिए यह दीपक साक्षी है। तुम्हें पाकर कृतकृत्य हो गया मैं। मुझे ज्ञात न था वज्रकूटों के बीच में मुझे तुम्हारे समान कुसुम-कोमलांगना प्राप्त हो जायेगी। इस शय्या में विश्राम करो। तुम्हारे लिए अब मेरी वाणी साधिकार हो गयी है, तुम उसकी अवमानना नहीं कर सकोगी (उसे शय्या में बिठा देता है।)

अपराजिता : मेरी शीर्ष-मणि बालों में उलझ गयी है। मैं इसे खोलकर सुलझा लेती हूँ। (सिर से शीर्ष-मणि खोलती है।)

चन्द्रविजय : तुम्हारी शीर्ष-मणि से मेरा ध्यान तुम्हारे सीमन्त पर चला गया और सीमन्त से मुझे अपने कुल की एक परम्परा याद हो उठी। हमारे यहाँ विवाह के अवसर पर क्षत्रिय पति अपनी वधू के सीमन्त में अपने खड्ग की धारा से सिन्दूर की पहली रेखा अंकित करता है।

अपराजिता : तुम क्या कह रहे हो यह ? बड़ी भयानक प्रथा है ! रक्त नहीं निकल पड़ता क्या ?

चन्द्रविजय : रक्त का निकलना ही तो बड़ा शुभ शकुन माना जाता है। इसीलिए बड़ी सावधानी और हल्के हाथों से सिन्दूर की रेखा खींचने-

वाले पति के तीक्ष्ण खड्ग पर सदैव ही नववधू बड़े वेग से अपना माथा रगड़ देती है। स्मृति हो गयी तो उस प्रथा को पार्थिव रूप देना ही चाहिए। सिन्दूर है?

अपराजिता : (शय्या से उठकर शीर्ष-मणि एक चौकी पर रख देती है और सिन्दूर निकालने को जाती हुई) लेकिन महाराज !

चन्द्रविजय : रक्त की क्या चिन्ता हो उठी तुम्हें? सिन्दूर तत्क्षण ही घाव को भर देता है।

(अपराजिता सिन्दूर की डिबिया निकालकर चौकी पर रखती है। चंद्रविजय खड्ग उठाकर कोष से बाहर निकालता है। दोनों सेनापति बाहर से द्वार खटखटाते हैं।)

प० सेना० : अपराध क्षमा हो, महाराज ! आपको कोई कष्ट देने का विचार तो था नहीं, परन्तु विवश होना ही पड़ा। कृपया द्वार खोल दीजिए।

चन्द्रविजय : (चकित होकर) क्यों आ गये फिर?

द्रू० सेना० : आवश्यकता खींच लायी, महाराज।

(अपराजिता घबराकर फिर शय्या के नीचे चली जाती है।)

चन्द्रविजय : (द्वार थोड़ा-सा खोलकर) कुशल तो है?

(दोनों सेनापति पूरे द्वार को खोलकर भीतर घुस आते हैं।)

प० सेना : बड़ी विचित्र बात हो गयी, महाराज! दुर्ग के परकोटे पर पहरा देते हुए हमारे एक सैनिक ने हमें चोकन्ना कर दिया, नहीं तो""

(चौकी पर नारी की शीर्ष-मणि देखकर चौंकता है।)

चन्द्रविजय : तुम चन्द्रविजय के प्रधान सेनापति हो। प्रहरी ने ऐसा क्या देख लिया कि तुम्हारा साहस तुमसे विदा हो गया?

द्रू० सेना : कहीं क्षितिज के आस-पास दूर जंगल में महाराज, पहले थोड़ा-सा उजाला हुआ, फिर बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गया।

चन्द्रविजय : शिव ! शिव ! मुझे तुम्हारी बुद्धि की पूंजी पर बड़ी दया आती है। तुम दोनों मेरे मुख्य सेनापति हो। एक-एक ग्यारह होना चाहिए था तुम्हें, तुम एक-एक दो भी नहीं हो सके ! एक में एक गया—शून्य ! भाई, ग्रामवासियों ने अलावा जला रखा होगा।

प० सेना० : महाराज, सभी लोग कहते हैं, उधर गाँव होने की कोई सम्भावना ही नहीं है।

दू० सेना० : और भी एक प्रार्थना है महाराज, अलाव एक ही स्थान पर रहता है। वह प्रकाश कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। और वे सब-के-सब चलने लगे। (चौकी पर नारी की शीर्ष-मणि देखकर घबराता है।)

चन्द्रविजय : गाँव होगा वहाँ पर और गाँव में होगा कोई उत्सव। जाओ, सो रहो, तुम एक सुदृढ़ दुर्ग के भीतर सुरक्षित हो। इसके लौह प्राचीर रात में किसी के द्वारा खण्डित नहीं हो सकते। चौंकसी पर जागरूक और स्वामिभक्त सेवक ही नहीं, बुद्धि का उपयोग करने वाले सैनिकों को नियुक्त करो। जाओ, मुझे विश्राम करने दो और तुम्हें भी तो उसी की आवश्यकता है।

प० सेना० : महाराज, वे प्रकाश बराबर चल ही रहे हैं और हमारे जीते हुए दुर्ग की दिशा की ओर ही तो। हमारे मन में अकारण ही सन्देह की वृद्धि नहीं हुई। आप चलकर देख लेंगे तो इसी निर्णय पर पहुँच जायेंगे।

चन्द्रविजय : इतनी छोटी-छोटी बातें अपने राजा की दृष्टि में भर दोगे तो वह कहाँ से बड़ी बातें देख सकेगा ? (उसे कुछ याद आती है।) हाँ, हमारी वह अतिरिक्त सेना, जिसे हम गंगा से उस पार के शिविर में छोड़ आये थे—क्या आश्चर्य है, वही मशालें लेकर हमसे मिलने न आ रही हो ?

प० सेना० : महाराज, हमारी सेना की दिशा दूसरी थी।

चन्द्रविजय : किसी कारणवश वह दिशा बदल भी सकती है। जाओ सेनापति हार जाने से पहले ही रो देने वाला व्यक्ति पराजय को निमन्त्रण देता है।

दोनों सेना० : महाराज चन्द्रविजय की जय हो !

चन्द्रविजय : जय के लिए केवल ध्वनि ही नहीं, धारणा भी दृढ़ होनी उचित है। इसलिए जाओ, परिश्रम से जिस विजय को प्राप्त किया है, विश्वास से उस पर जमे रहो। अकारण ही मुझे बाधा पहुँचाने से कोई लाभ नहीं।

[महाराज के अलक्ष्य में दोनों सेनापति एक-दूसरे को शीर्ष-मणि दिखाते हैं।]

दू० सेना० : आप निश्चिन्त होकर विश्राम कीजिए। अब हम आपको कष्ट न देंगे।

प० सेना० : पवन में केले के पत्ते-सा कोमल हृदय लेकर हम आये थे, आपके दो ही शब्दों ने उसमें अचल पर्वत की स्थिरता भर दी।

[दोनों सेनापति चले जाते हैं। चन्द्रविजय तुरन्त ही द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा शय्या के पास जाता है।]

चन्द्रविजय : बाहर आओ अपराजिते, यदि वह तुम्हारे पिता की सेना भी है तो मुझे कोई भय नहीं है।

अपराजिता : (शय्या के नीचे से बाहर निकलकर) क्यों, भय क्यों नहीं है ?

चन्द्रविजय : दुर्ग के द्वार पर तुम्हें खड़ा कर क्यों न मुझे सहज ही सन्धि प्राप्त हो जायेगी ? तुम्हारे सीमन्त में खींची गयी यह सिन्दूर की रेखा क्या सन्धिपत्रों के हस्ताक्षरों में न बदल जायेगी ? (खड्ग की धार से सिन्दूर लगाता है।)

अपराजिता : यह किसकी सेना है ?

चंद्रविजय : किसी की भी हो। जो दोनों पक्षों में उपेक्षित है: इस जगत में केवल वही सुख से रहता है, अपराजिते ! लाओ, अपने सीमन्त के

इन दोनों पक्षों को मेरे निकट लाओ। बिना पक्षपात के ठीक बीचोबीच, मैं इस सिन्दूर की रेखा को अंकित करूंगा। (उसके सीमंत की ओर खड्ग बढ़ाता है।)

अपराजिता : अपना सिर चंद्रविजय की तरफ बढ़ाते हुए) धीरे-धीरे राजन् !

चन्द्रविजय : हाँ, अपराजिते ! धीरे-धीरे कि क्षत गहरा न हो और अंधविश्वास की रक्त-भिक्षा पूरी हो जाय। (खड्ग से उसके सीमन्त में सिन्दूर की रेखा खीचता है।)

अपराजिता : रेखा खिंच गयी ?

चन्द्रविजय : (अपने उँगली से क्षत में सिन्दूर दबाकर) हाँ, रेखा भी खिंच गयी और हमारे मंगल को दशुगणित करने के लिए रक्त का बिन्दु भी प्रकट हो गया। (ज्यों ही अपराजिता के कन्धे पर हाथ रखना चाहता है, फिर बाहर द्वार पर एक सैनिक खटखटाता है।)

सैनिक : महाराज की जय हो !

चन्द्रविजय : (रोष के स्वर में) जय हो चुकी, दुर्ग पर अधिकार भी हो गया, फिर क्या हल्ला मचाते हो ? (द्वार के पास जाता है।)

सैनिक : महाराज, भोजन तैयार हो गया, भण्डारी ने आपकी आज्ञा माँगी है।

चन्द्रविजय : मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ।

सैनिक : तो सेना को भोजन की आज्ञा दी जाय ?

चन्द्रविजय : वह स्वयं ही तभी तुम्हें मिल चुकी। जाओ, अब सेना के श्वास-प्रश्वास की आज्ञा माँगने को न आना। (अपराजिता के पास आता है।) देखी तुमने ! आज ये सब के सब अपनी चाटुकारिता से हमारे प्रेम-मिलन के बाधक हो उठे।

अपराजिता : आप कोई उत्तर न दें, महाराज ! वे लौट जायेंगे, जो भी होंगे।

चन्द्रविजय : तुम सारी रात की जागी हो। तुम्हारा फूल-सा मुख चिन्ता और जागरण की दोहरी व्यथा से कुम्हला गया है। (अपराजिता का

हाथ पकड़कर उसे शय्या पर बिठा देता है। एकाएक बाहर फिर किसी की चापें सुनायी देतीं हैं।) फिर कोई आता है। ये नहीं मानेंगे। बिलकुल मार्ग में; खैसी तुम्हारे इस प्रकोष्ठ की अवस्थिति है, अपराजिते ?

अपराजिता : अन्तःपुर के प्रांगण में ही तो आपकी पाकशाला बना दी गयी है। इसी से यह सब गड़बड़ है।

चन्द्रविजय : अपराजिते ! और कहीं कोई दूसरा प्रकोष्ठ नहीं है जहाँ हम रात बिता सकें—इस कोलाहल से दूर ?

अपराजिता : क्यों नहीं ? दुर्ग के उत्तरी पार्श्व में उधर मेरे पिता के कई कक्ष हैं।

चन्द्रविजय : चलो, यहाँ ऐसे ही बन्द कर हम वहाँ देखें तो सही।

अपराजिता : चलिये।

चन्द्रविजय : भोजन के उपरान्त, विजय के उल्लास में आसव की अतिरिक्त घूंट पीकर और भी अधिक ऊधम मचायेंगे। तब कैसा राजा और कैसी प्रजा ? कैसा स्वामी और कैसा सेवक ? चलो।

[अपराजिता अपनी शीर्ष-मणि उठाकर पहनती है।]

चन्द्रविजय : ठहरो, मैं देखता हूँ, बाहर कोई है तो नहीं। (द्वार खोलकर देखता है, फिर लौट आता है।) चलो पहरे पर भी कोई नहीं है, सब भोजन पर टूट पड़े हैं। चलो। (अपना मुकुट पहन लेता है।)

[दोनों जाते हैं। चन्द्रविजय जाते समय द्वार बन्द कर जाता है। कुछ देर में फिर वे दोनों सेनापति बाहर के द्वार से खट-खटाते हैं।]

प० सेना० : महाराज ! (अचानक द्वार खुल जाता है, दोनों सेनापति उस कक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं।)

दू० सेना० : हैं ! कहाँ गये महाराज ? वे तो यहाँ नहीं हैं।

प० सेना० : मैंने क्या तुमसे झूठ कहा था ?

दू० सेना० : फिर किसकी थी वह शीर्ष-मणि ?

प० सेना० : यह पराजित राजा का अन्तःपुर है, होगी किसी अन्तःपुरचारिणी की ।

दू० सेना० : शीर्ष-मणि होगी किसी अन्तःपुरचारिणी की ! लेकिन कहाँ है वह ? किसी का एक पदांक भी तो ढूंढ़े नहीं मिलता !

प० सेना० : कोई अवश्य रह गयी है यहाँ !

दू० सेना० : कैसे कहते हो ?

प० सेना० : वह शीर्ष-मणि । पहले थी वह यहाँ पर ?

दू० सेना० : नहीं ।

प० सेना० : फिर उसके होने का क्या अर्थ है ?

दू० सेना० : कुछ समझ में नहीं आता ।

प० सेना० : महाराज ने क्यों द्वार बन्द कर दिये ?

दू० सेना० : क्यों किये ?

प० सेना० : इस कक्ष में रहने वाली रमणी की शीर्ष-मणि चुराने के लिए नहीं ।

दू० सेना० : स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?

प० सेना० : महाराज को अवश्य यहाँ कोई मिल गयी है ।

दू० सेना० : असम्भव सत्य है ।

प० सेना० : इस कक्ष में तुमने पहले किसी की साँसें सुनी थीं, याद तो करो ।

दू० सेना० : हाँ याद तो आती है ।

प० सेना० : तुम्हारा अनुमान ठीक ही है, शीर्ष-मणि उसकी साथी है । इसलिए चलो, भाग चलें ! महाराज किसी आवश्यक काम से ही कहीं गये हैं । उनके आयुध और कवच यहीं रखे हैं । आते ही होंगे । चलो ।

दू० सेना० : चलो, लेकिन इस बढ़ती हुई शत्रु की आशंका का क्या करें ?

प० सेना० : जो भी होगा, देखा जायेगा ।

(दोनों जाते हैं। कुछ देर बाद अकेली अपराजिता आती है और द्वार बंद कर जल्दी-जल्दी एक ताड़-पत्र पर कुछ लिखकर उसे पढ़ती है, फिर उसे अपनी कंचुकी के भीतर रख लेती है। वह कपोत के पिंजरे के पास जाती है, ज्योंही पिंजरे का द्वार खोलना चाहती है, बाहरी द्वार पर खट-खट होती है। अपराजिता दौड़कर उसे खोल देती है। चंद्रविजय आता है।)

चन्द्रविजय : यही कक्ष मुझे प्रिय है, क्योंकि यह तुम्हारा है। अब मैं प्रहरी को सावधान कर आया हूँ, इधर से किसी को न आने दे। (वीणा को दिखाकर) यह वीणा तुम्हारी ही है ?

अपराजिता : हाँ, महाराज।

चन्द्रविजय : सुनूं तो। तुम्हारे स्वर के प्रकाश से यह रात्रि सुवासित हो उठेगी।

अपराजिता : नहीं महाराज, लोग क्या कहेंगे ?

चन्द्रविजय : तुम्हारा गीत सुन लेने पर फिर किसी का साहस न रहेगा इधर आने का।

अपराजिता : आज क्षमा कर दीजिये, मेरी आँखें नींद से भारी हो उठीं।

चन्द्रविजय : अच्छा, सो जाओ। कैसा अद्भुत यह हमारा और तुम्हारा मिलन है। यह एक दिन का परिचय नहीं, जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। जिस तरह जगत सूर्य की परिक्रमा करता रहता है, जी चाहता है मैं भी ऐसे ही तुम्हारी प्रदक्षिणा करता रहूँ। जीवन की समस्त कामनाएँ इसी एक कर्म में विलीन हो जायँ। (उसकी परिक्रमा करनी आरम्भ करता है। दोनों सेनापति फिर बाहर आकर द्वार खटखटाते हैं। चन्द्रविजय क्रुद्ध होकर अपना खड्ग उठाता है।) कौन है ?

प० सेना० : (बाहर ही से) महाराज, वे प्रकाश के पुंज बराबर इसी दुर्ग की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। वे हमारे सैनिक नहीं हैं क्योंकि हमने मशालों से जो संकेत दिये, उन्हें ग्रहण कर नहीं लौटाया

गया। हमने भेरियों में भी उन्हें गुप्त संवाद दिये, वे उन्हें समझ-कर कोई उत्तर नहीं दे सके।

चन्द्रविजय : (बिना द्वार खोले ही भीतर से) तो क्या बिगड़ गया तुम्हारा ?

प० सेना० : उनके बराबर हमारी ओर बढ़ने के उत्साह को देखकर तो यही जान पड़ता है वे कहीं से ठोस सहायता पाकर हमारे ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं।

चन्द्रविजय : आने दो। इस अँधेरे में तुम्हारे जैसे डरपोकों की परीक्षा होनी उचित है।

दू० सेना० : अगर रात ही में उन्होंने आक्रमण कर दिया तो ?

चन्द्रविजय : क्या तुम्हारी सेना गोबर और मिट्टी की रचना है ? तुरन्त चले जाओ, मैं ऐसे कापुरुषों की कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ। हटो, बुद्धि रखते हो तो उसका उपयोग करो, नहीं तो मेरे पास आने से अच्छा है कि शत्रु द्वारा तुम्हारी समाप्ति हो जाय। (कुछ देर द्वार पर कान लगाकर सुनता है।) चले गये ! (हँसता है।) हा-हा ! इन बेचारों को मालूम नहीं है—और उन आक्रमण करने वालो को भी नहीं कि संधिपत्र हमें मिल गया है (अपराजिता की ठोड़ी पकड़ता है।) हाँ, अपराजिते ! मेरे निकट आओ कि हमारे मिलन में दो विग्रह-प्रिय राज्यों के संधिवाद्य सम पर झंकृत हो उठें। (ज्योंही उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगता है त्योंही नेपथ्य में अटूट स्वरों में भेरियाँ बजने लगती हैं। सैनिकों का कोलाहल सुनायी देता है। वह अपराजिता का हाथ छोड़कर उधर ध्यान देता है।)

अपराजिता : (चन्द्र विजय के सामने जाकर) यह क्या हो रहा है ?

चन्द्रविजय : यह सन्निपात भेरी है।

अपराजिता : क्या अर्थ है इसका ?

चन्द्रविजय : मेरा प्रत्येक सेवक इसे सुनकर जहाँ भी जिस दशा में हो तुरन्त

ही भेरी बजने के स्थान पर चला जाता है, यही इस भेरी का अर्थ है। इसकी अवज्ञा मृत्यु-दण्ड है। लाओ, मेरा कवच पहना दो मुझे।

अपराजिता : (चन्द्रविजय का हाथ पकड़कर) लेकिन महाराज....

चन्द्रविजय : हाँ, हाँ; हृदयेश्वरी ! (द्वार की शृङ्खला खोलता है।)

अपराजिता : प्रियतम !

चन्द्रविजय : कहती क्यों नहीं ?

अपराजिता : आप अभी तक बिलकुल निर्भय थे। सन्निपात भेरी के वश में आप हो जायें क्यों ? वह किसकी आज्ञा है ?

चन्द्रविजय : हाँ मेरी। मैं ही उस आज्ञा का जनक हूँ। इसलिए मैं उसके बंधन से मुक्त भी हुँ। तुम विश्राम करो। (उसे शय्या पर सुला देता है) [दोनों सेनापति द्वार खोलकर भीतर आ जाते हैं। अपराजिता जल्दी से पीठ फिरा कर मुंह ढक लेती है।]

प० सेना० : महाराज, शत्रु ने आक्रमण आरम्भ कर दिया है। किन्तु........ (शंकित होकर शय्या की ओर देखता है।)

चन्द्रविजय : (क्रोध के आवेश में) तुम बिना आज्ञा के मेरे कक्ष में क्यों चले आये ?

प० सेना० : राष्ट्रीय संकट के समय शिष्टाचार भूल जाते हैं।

चन्द्रविजय : ऐसा कहना तुम्हारी अशिष्टता की पराकाष्ठा है।

द्व० सेना० : क्षत्रियत्व की पुकार के लिए, मर्यादा के मान के लिए, राष्ट्रधर्म की रक्षा के लिए, कर्तव्य के ऐसे भीषण आह्वान के समय—आप यह क्या कर रहे हैं ?
यह क्या कर रहें हैं ?

चन्द्रविजय : क्या कर रहा हूँ ?

प० सेना० : कर रहे हैं,रक्त के क्षेत्र में. रंग की क्रीड़ा,युद्ध के मैदान में प्रेम की

लीला, मृत्यु के प्रांगण में मन्मथ की पूजा ! क्या शरों की बौछार में आपने यह फूलों की शय्या नहीं बिछाई है ?

चन्द्रविजय : क्या बकते हो ? तुम मेरे नौकर हो ।

प० सेना० : हम सब मनुष्यता के नौकर हैं । यदि हम राष्ट्र के सेवक नहीं हैं, उसकी आपदा के समय अपने इन्द्रिय-सुख के समर्थक हैं तो कामी, विलासी और पशु हैं । मानवता के नाम पर कलंक, धरती माता के भार हैं । हमारी वीरता, हमारा ढोंग, हमारा युद्ध, हमारा स्वार्थ और हमारी विजय दूसरे के सर्वस्व का हरण है ।

दू० सेना० : राजन्, ऐसा ही है इसीलिए तुम कोई उत्तर नहीं दे सकते ।

चन्द्रविजय : (माथा नीचा करता हुआ) अपराध हो गया मुझसे ? क्या अपराध हो गया ?

प० सेना० : आप सेवकों के नरमुण्डों पर अपनी पशु-कामना से खेलते हैं ! रण की यह काल-रात्रि और आप कानों में तेल भरे चुप बैठे हैं ? धिक्कार है ! वह सन्निपात भेरी बज उठी ! उसके आह्वान पर सब अपने जीवन को हथेली पर रखकर उसके नीचे आ खड़े हो गये । आप क्यों नहीं आये ? उत्तर दें !

चन्द्रविजय : वह मेरी पुकार है । उस आज्ञा का स्रष्टा मैं हूँ । पुकारने वाला कहीं नहीं जाता,सबको दिखाने वाली आँखें अपने को नहीं देखतीं ।

दू० सेना० : धिक्कार है ऐसे स्रष्टा को जो संतान के ग्रास से अपनी काम-ज्वाला बुझाता है !

चन्द्रविजय : यह सब तुम्हारा भ्रम है ।

प० सेना० : यह भ्रम है ? (संकेत से शय्या में सोयी हुई अपराजिता को दिखाता है ।) यह इतनी स्थूल साक्षी । इसे भ्रम कहा जायगा ? चलो सेनापति, ऐसे थोथे तर्क में हमें बहुमूल्य समय की आहुति देने से कोई लाभ न होगा ।

दू० सेना० : धिक्कार है ! थू !

७

प० सेना० : धिक्कार है ! थू !

[दोनों धरती पर थूक, बड़ी घृणा व्यक्त कर चले जाते हैं।]

चन्द्रविजय : (मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर दोनों हाथों से अपना माथा ठोंकता है, फिर अपने खड्ग की ओर दृष्टि कर अपराजिता को देखता है।) अभागिनी नारी।

अपराजिता : (इस सम्बोधन से घबराकर शैया में उठ बैठती है।) तुमने यह क्या कहा ?

चन्द्रविजय : कुछ नहीं।

अपराजिता : अवश्य कोई गहरा आशय है तुम्हारा। (शय्या से उठकर चंद्रविजय का हाथ पकड़ लेती है।)

[चन्द्रविजय अपना खड्ग उठा लेता है।]

अपराजिता : तुमने यह खड्ग क्यों उठा लिया ? और तुम्हारी आँखों में मुझे हिंसा रेंगती हुई दिखाई देने लगी।

चन्द्रविजय : देखा तुमने ? ये सब हमारे संयोग के शत्रु हो उठे। ओह ! कैसी घृणा से वे मेरे मुख पर थूककर मुझे तिरस्कृत कर चले गये। वे मेरे नौकर ! जीवन के इस घोर अपमान को किसी प्रकार स्मृति के पटल पर से खुरचकर भी मिटा नहीं सकूंगा। कैसे उनका मुंह बन्द हो ? क्या सचमुच में मैं कामी और कापुरुष हूँ ? (कुछ देर तक विचार करता है।)....नहीं ! ऐसा नहीं है। मैं कामी नहीं हूँ। मैं कापुरुष भी नहीं हूँ। मैं आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रियतम वस्तु की बलि भी दे सकता हूँ।

अपराजिता : (घबराकर चन्द्रविजय के गले में दोनों हाथ डाल देती है।) तुमने क्या कहा यह ?

चन्द्रविजय : तुम वीरांगना हो, तुम्हें कदापि अपने स्वामी के मार्ग की बाधा बनना शोभा नहीं देता। तुम्हें तो उसका उत्साह बढ़ाने में सर्वस्व देने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

अपराजिता : प्रियतम ! प्राण !

चन्द्रविजय : हाँ, प्रेम अमरत्व है। (उसके दोनों हाथ छुड़ाकर) नहीं, वह मेरी ही ध्वनि है। मुझे भी उसमें वँधना होगा।

अपराजिता : ठहरो न। मुझे भी चलने दो अपने साथ। तुमने कहा था.........

चन्द्रविजय : नहीं ! (उसके पेट में खड्ग भोंक देता है।)

अपराजिता : (धरती पर गिरती हुई) ओ ऽ ऽ ! पापी ! हत्यारे !

चन्द्रविजय : तुम्हारी गाली भी मुझे फूलों की वर्षा है, पर उनकी भर्त्सना भयानक वज्रपात ! अपराजिते, तुम्हें एक ही निशा की कुछ घड़ियों में अनन्त प्यार दिया, यही संसार को असह्य हो उठा और यही तुम्हारे वध का कारण बन गया। तुम्हारे जीवित रहने पर मुझे फिर-फिर ऐसा ही मोह करना पड़ता और उन्हें बार-बार मुझे अप्रतिभ करने के अवसर मिलते रहते। इसीलिए ! सुमुखि इसीलिए !....अवश्य ही तुम्हारा अपराधी हूँ। (उसके पेट से खड्ग बाहर निकालकर उसके हाथ में देता है।) इस खड्ग से मेरा मस्तक उड़ा दो, अब तुम्हारी बारी है। मैं हँसते हुए प्राण दे दूँगा। (अपराजिता के शिथिल हाथों से खड्ग नीचे गिर पड़ता है। चन्द्रविजय उसकी कंचुकी के बाहर निकले हुए उस ताड़-पत्र को देखता है।) हैं ! यह कैसा ताड़-पत्र है ? (उसी समय धीरे-धीरे फिर वे दोनों सेनापति वहाँ प्रवेश करते हैं।) इसमें कुछ लिखा है। पढ़ूँ तो (पढ़ता है।)—'योजना सफल हो गयी ! मैंने चन्द्रविजय को अपने जाल में फँसा लिया। एक-दो घण्टे में मैं इसे समाप्त कर ही डालूंगी। दुर्ग के गुप्त द्वार पर तीन बार विषाण बजाना। मैं उसे खोल दूँगी—तुम्हारी विषकन्या !' विषकन्या ! हैं ! विषकन्या ? (अपराजिता छटपटाकर प्राण त्याग देती है।) अपराजिता ! चल बसी ! ऐसी रूपवती ! इतनी मोहमयी ! अब भी तो इसके विष-भरे अधर अपनी ओर खींचते हैं। (धीरे-धीरे उसकी ओर मुंह बढ़ाता है और पहले

सेनापति की खाँसी सुनकर चौंकता है और उसकी तरफ देखता है।) कौन, सेनापति? मैं विष का ग्रास हो गया था! यह विषकन्या है! कितनी छलना-भरी! यह इसका रहस्य! (ताड़-पत्र दिखाता है।) और वही तो शायद सिखाया हुआ कपोत है, जिसके गले में बँधकर यह सन्देश शत्रु के पास पहुँच जाता है। क्या तुमने ही मेरे प्राण बचाये? (फिर सन्निपात भेरी बजती है।) फिर बज उठी यह सन्निपात भेरी! बाँधने वाला सबसे पहले बँधे—यही विधान की सार्थकता है और यही उसकी शक्ति! (तलवार सँभालकर, कवच उठा, पहनते हुए बाहर को दौड़ता है।)

दोनों सेना० : (उल्लास में भरकर) महाराज चन्द्रविजय की जय! (दोनों चन्द्रविजय का अनुसरण करते हैं।)

बन्दी

●

जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र

रायसाहब : हाई कोर्ट के जज

हेमलता : रायसाहब की लड़की

आया :

चेतू (चेतराम) : गाँव का मजदूर

बीरेन : प्रगतिशील विचारधारा का एक (ग्रेजुएट) युवक

बालेश्वर, करमचन्द : गाँव के अर्द्धशिक्षित युवक

लोचन : गाँव का एक साहसी युवक, बीरेन का सहपाठी

(उत्तर भारत के एक गाँव में एक बड़े घराने के बँगले का बगीचा। पृष्ठभूमि में मकान की झलक। मकान में जाने के लिए बायीं तरफ से रास्ता है और बाहर जाने के लिए दाहिनी तरफ। समय चैत्र पूनो की सन्ध्या। चाँदनी का साम्राज्य गोधूलि वेला में ही फैल रहा है। राय तारानाथ हेमलता के साथ एक स्थान की ओर संकेत करते हुए आते हैं।)

रायसाहब : और यही वह स्थान है, जहाँ तुम्हारी माँ पूजा के बाद तुलसीजी को पानी चढ़ाने आती और मैं····

हेमलता : आप तो नास्तिक रहे होंगे पापा ?

रायसाहब : तुम्हारी माँ को चिढ़ाने के लिए। लेकिन उसकी श्रद्धा अडिग थी। और तभी मैं बगीचे के किसी कोने में····शायद वही तो···· वह देखती हो न पत्थर ?

हेमलता : याद है।

रायसाहब : क्या याद है ?

हेमलता : कि उस पत्थर पर बैठकर आप मुझे सितारों की कथा सुनाया करते थे। (रुककर मानों कुछ याद आयी हो।) पापा; कलकत्ते में सितारों भरा आसमान मानों मेरे मन के कोने में दुबका पड़ा रहता था, लेकिन यहाँ (स्निग्ध स्वर) गाँव आते ऐसे ही खिला पड़ता है, जैसे आज इस चैत्र पूनों की चाँदनी।

रायसाहब : आसमान भी खिला पड़ता है और तुम्हारा मन भी बेटी। (हँसता है। कुछ रुककर) बजा क्या है ? (आहिस्ता से) गाड़ी का तो वक्त हो गया होगा ?

हेमलता : आप भी पापा (रूठकर) समझते हैं कि मुझे यूँ तो चाँदनी भाती ही नहीं, सिर्फ····

रायसाहब : (बात पूरी करते हुए) वीरेन की इन्तजारी की घड़ी में ही खिली पड़ती है। (हँसते हैं) बुराई क्या है ? वीरेन भला लड़का है, इसीलिए तो यहाँ आने का न्योता दिया है उसे। देखूं गाँव की आभा उसके मन चढ़ती है या नहीं ?

हेमलता : जैसे जनम से ही शहर की धूल फाँकी हो।

रायसाहब : वही समझो। कहता था न कि बचपन में पिता के मरने पर बरेली चला गया और उसके बाद लखनऊ और तब कलकत्ता....

हेमलता : मुझे भी तो आप बचपन में ही कलकत्ते ले गये और अब लाये हैं गाँव पहली बार....

रायसाहब : मैं तुम्हें लाया हूँ बेटी या तुम मुझे ?

हेमलता : पापा, आते ही मैं तो यहाँ की हो गयी। न जाने कितने युगों का नाता जुड़ गया। (उल्लासपूर्ण स्वर) यह हमारा घर, पुरानी कोठी, जिसकी दीवार में पड़ी दरारें मुस्कान भरे मुखड़े की सिलवटें हैं। ये दूर-दूर तक फैले हुए खेत, जिन पर दबे पाँव दौड़ते-दौड़ते हवा उन पर निछावर हो जाती है और यह चाँदनी जो जितना हँसती है उतना ही छिपाती भी है। (तन्मय) कलकत्ते में चैत की चाँदनी और ईद के चाँद में कोई अन्तर नहीं होता। लेकिन यहाँ, झोपड़ियों पर, बाँस के झुरमुटों में, खेत-खलिहान पर, बे-हिसाब, बे-जुबान, बे-झिझक चाँदनी की दौलत बिखरी पड़ रही है। ओह, पापा !

(अपरिमित सुखानुभूति का मौन)

आया : (नेपथ्य में) हेम बीबी चाय तैयार है।

रायसाहब : चाय ! इतनी देर में ?

हेमलता : आया की जिद ! कहती है सर्दी हो चली है, थोड़ी चाय पी लो। (मकान की ओर रुख करके) यहीं ले आओ आया, बगीचे में। और दो मूढ़े भी।

रायसाहब : (स्मृति के सागर में उतराते हैं) सोचता हूं कि अगर तुम्हारी माँ तुम्हारी तरह बोल या लिख पाती तो वह भी तुम्हारी तरह आर्टिस्ट होती।

हेमलता : अगर माँ बोल पाती तो आपको कलकत्ते न जाने देती।

रायसाहब : रोका था। दो-चार आँसू भी गिराये थे। लेकिन क्या तुम सच मान सकती हो हेम, कि मैं न जाता? कैसे न जाता? दूसरे, कैरियर का सवाल था। यह जमींदारी उन दिनों भरी-पुरी थी, लेकिन आखिर को ले न डूबती मुझे अपने साथ!

हेमलता : काश इस गाँव में ही हाईकोर्ट होता। यहीं आप वकालत करते और यहीं जज हो जाते।

रायसाहब : वाह बेटी! तब तो यहीं वह बड़ा अस्पताल भी होता जहाँ तुम्हारी माँ की लम्बी बीमारी का इलाज हुआ था और यहीं वह कॉलेज और हाईस्कूल होते, जहाँ तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा हुई और यहीं वे थियेटर सिनेमा....(आया का प्रवेश। हाथ में ट्रे। अपनी धुन में बात करती है।)

आया : यही तो मैं कहती थी सरकार! इस देहात में कैसे हेम बिटिया की तबियत लगेगी। सनीमा नहीं, थेटर नहीं, क्लब नहीं। (पीछे की तरफ देखकर पुकारती हुई) अरे ओ चेतुआ, किधर ले गया मेज?....देहात का आदमी, समझ भी तो मोटी है! (चेतुआ एक हाथ में छोटी-सी टेबल और एक में मूढ़ा लिये हुए आता है।) उधर रख....हाँ बस (मेज पर चाय की ट्रे रख देती है। चाय बनाती हुई।) आपके लिए भी बनाऊँ सरकार?

रायसाहब : (कुछ अनिश्चित से मूढ़े पर बैठते हुए) मे....रे....लिए....

आया : (चेतुआ को खड़ा देखकर) अरे खड़ा क्यों है? दूसरा मूढ़ा तो उठा ला दौड़कर।

चेतराम : (जाते हुए) अभी लाया जी!

आया : (प्याला देती हुई) लो बीबी जी, गर्म कपड़ा नहीं पहना तो गर्म चाय तो लो।

हेमलता : तुम तो आया समझती हो कि जैसे हम बरफ की चोटी पर बैठे हैं !

आया : (दूसरा प्याला बनाते हुए) नहीं हेम बीबी, देहात की हवा शहर-वालों के लिए चंडी होती है चंडी !

हेमलता : तुम भी तो देहात की हो आया।

आया : अब तीन चौथाई जिन्दगानी तो गुजर गयी आप लोगों के संग (चाय का प्याला राय साहब की ओर बढ़ाते हुए) लीजिए सरकार ! (राय साहब को देख, कुछ चौंककर) अरे !

रायसाहब : (प्याला लेते हुए) क्यों क्या हुआ ?

आया : आप भी सरकार गजब करते हैं। यहाँ खुले में आप यों ही बैठे हैं।

[घर की तरफ तेजी से बढ़ती है।]

हेमलता : किधर चली आया ?

आया : (जल्दी से) ड्रेसिंग गाउन लेने।.........साहब का बेरा कलकत्ते से आता तो ऐसी गफलत नहीं होती ?

[चली जाती है।]

रायसाहब : हा हा हा (ठहाका मारते हैं।) गुड ओल्ड आया ! (चाय पीते हुए) समझती है कि सारी दुनिया नादान बच्चों का झुण्ड है और अकेली वह माँ है।

हेमलता : क्या सच उसे देहात नहीं सुहाता पापा ? मैं नहीं मान सकती। मगर.........(चेतू मूढ़ा ले आता है।) यहीं रख दो मूढ़ा, मेज के पास।

रायसाहब : मुझे ये पुराने मूढ़े पसन्द हैं। कमर बिलकुल ठीक एंगिल में बैठती है। (चेतू को रोककर) ए, क्या नाम है तुम्हारा ?

चेतराम : जी चेतराम।

रायसाहब : कहार हो ?

चेतराम : मुसहर हूँ सरकार।

रायसाहब : मुसहरों की तो एक बस्ती थी करीब ही कहीं, गन्दी-सड़ी। बाप का नाम ?

चेतराम : कमतूराम।—अब गन्दगी नहीं सरकार !

रायसाहब : अरे, तू कमतू का लड़का है ?

हेमलता : क्यों नहीं है अब गन्दी बस्ती ?

[आया का प्रवेश]

आया : लीजिए सरकार ड्रेसिंग गाउन, जब बैठना ही है यहाँ खुले में तो····अरे तू यहीं खड़ा है चेतू ?

रायसाहब : (ड्रेसिंग गाउन पहनते हुए) आया, यह तो उसी कमतू का लड़का है जो १५ बरस पहले यहाँ····

आया : हाँ सरकार, मैंने तो उसे ही बुलाया था, मगर उसने लड़के को भेज दिया। खैर, जाने पहचाने का लड़का है। चोरी-ओरी करेगा तो पकड़ना मुश्किल नहीं।

हेमलता : तुम तो, आया····।

आया : अरे हाँ बीबी जी, अब ये देहाती सीधे-सादे नहीं रहे। हमारे-तुम्हारे कान काटते हैं। चेतू, चाय की ट्रे लेकर जल्दी आना, पलंग-वलंग ठीक करने हैं (चलते-चलते) देखूं बावर्ची ने खाना भी तैयार किया कि नहीं।

रायसाहब : डीयर ओल्ड आया।

[आया जाती है। रायसाहब चाय की चुस्की लेते हैं।]

हेमलता : चेतराम !

चेतराम : जी, बीबी जी।

हेमलता : मुसहर बस्ती में अब गन्दगी नहीं है ! क्यों ?

चेतराम : बस्ती ही बह गयी सरकार।

रायसाहब : बह गयी ?

चेतराम : पिछले साल बहुत जोर की बाढ़ आयी। हमारी तो बस्ती ही खत्म हो गयी। चालीस घर थे। मेरे दादा के पास धनहर खेत था आठ कट्ठा। जैसे-तैसे महाजन से छुड़ाया। वह भी बालू में पड़ गया। और कान्हू काका की चार बकरी थी। सब पानी………।

रायसाहब : सरकारी मदद मिली ?

चेतराम : बातचीत तो चल रही है………पर अब तो हम लोग पहाड़ी की तलहटी में चले गये हैं। नयी टोली बस रही है।

रायसाहब : ओ हो, बड़े जोम हैं। लेकिन वहाँ तो ऊसर जमीन है। खेत की गुंजायश कहाँ ?

चेतराम : मुश्किल तो हुई है सरकार। पर बारी-बारी से दस-दस जन मिलकर तैयार करते हैं। एक बाँध बन जाये तो बेड़ा पार है सरकार।

रायसाहब : हिम्मत तो बहुत की तुम लोगों ने !

हेमलता : लेकिन है मुसीबत ही। रोज का खाना-पीना कैसे चलता होगा इन लोगों का ?

रायसाहब : यही, नौकरी-मजूरी। जब मिल जाय।

चेतराम : वह तो हुई है सरकार ! पर अब तो बाँस का काम करने लगे हैं। हाट-बाजार में बिक जाता है। इनसे भी बढ़िया मूढ़े बनाने लगे हैं।

रायसाहब : अच्छा ? लाना भाई हमारे लिए भी एक सेट।

चेतराम : जरूर सरकार ! दादा तो इसी में लगे रहते हैं रात-दिन। मैंने भी टोकरी बनाना सीख लिया है, रंग-बिरंगी। लोचन भैया को बहुत पसन्द है। कहते हैं शहर में तो बहुत बिकेंगी····

हेमलता : तो तुम्हारे भाई भी हैं ?

चेतराम : (हँसता है) न बीबी जी ! लोचन भैया ? लोचन भैया तो···· सबके भैया हैं ! कहते हैं·······

रायसाहब : जगत भैया !

आया : (नेपथ्य में) चेतू, ओ चेतू !

चेतराम : चाय ले जाऊँ सरकार ?

रायसाहब : हाँ, और तो नहीं लोगी हेम ?

हेमलता : ऊँ····हाँ····हाँ····नहीं । ले जाओ !

(चेतू ले जाता है । रायसाहब ड्रेसिंग गाउन की जेब में हाथ डाल कर घूमने लगते हैं ।)

रायसाहब : तो यह है इन लोगों की जिन्दगी । गरीब भी और गन्दे भी । उन दिनों तो उस टोली में बिना नाक बन्द किये जाना हो ही नहीं सकता था । बाप इसका मेहनती था । असल में काम करने में पक्के हैं ये लोग, लेकिन हैं जाहिल !

हेमलता : पापा, आपको याद है हमारे आर्ट मास्टर ने वह तसवीर बनायी थी 'किसान की साँझ'—कन्धे पर हल, आगे बैल, थका-माँदा किसान, साँझ की चित्ताकर्षक रंगीनी में भी निर्लिप्त····

रायसाहब : पाँच सौ रुपये दाम रखा था न उन्होंने उसका ?

हेमलता : पापा, आपने गौर किया इस चेतराम की शक्ल उससे मिलती है····मास्टर साहब कहते थे देहाती जिन्दगी और दृश्यों में अनगिनती मास्टर-पीसेज के बीज बिखरे पड़े हैं । एक-एक चेहरे में सदियों का अवसाद है । एक-एक झाँकी में युगों की गहराई । अमृता शेर-गिल····

रायसाहब : अमृता शेरगिल····भई, उसकी तसवीरों पर तो मातम-सा छाया रहता है ।

हेमलता : वह तो अपना-अपना एटीट्यूड है । अपनी भंगिमा ! लेकिन पापा, यह तो मानियेगा कि शेरगिल के रंगों में भारत के गाँव की मिट्टी झलक रही है । पापा; मुझे लगता है जैसे मेरी कूँची मेरे ब्रश को यहाँ आकर नयी दृष्टि मिली हो । कितने चित्र हैं यहाँ खींच

सकती हूँ ? पकते हुए गेहूँ के खेत में चकित-सी किसान बाला। रंग-बिरंगी बाँस की टोकरियाँ बनाता हुआ इसी चेतराम का बाप ! सवेरे की किरन में धुली-धुली-सी गाय को दूहता हुआ ग्वाला....

रायसाहब : और यह चाँदनी ! (हँसता है) मगर हेम, वह चित्र भी तैयार हुआ या नहीं ?

हेमलता : कौन-सा ?

रायसाहब : अरे वही....खास चित्र !

हेमलता : पापा आप तो (शर्मीली-सी) लेकिन बीरेन ने पन्द्रह मिनट को भी लगातार सिटिंग नहीं दी। इधर से उधर फुदकते फिरते थे।

रायसाहब : इस वक्त भी जान पड़ता है कहीं फुदक ही रहे हैं, हजरत।....

हेमलता : आपने भी फिजूल भेजा ताँगा। जिसके पैर में ही सनीचर हो....

(बीरेन पीछे से हठात् निकलता है।)

बीरेन : सनीचर नहीं आज तो शुक्र है। कहीं इसी वजह से तो तुम ताँगा भेजना नहीं भूल गयीं ?

हेमलता : बीरेन !

रायसाहब : बीरेन ? अरे ! क्या तुम्हें ताँगा नहीं मिला स्टेशन पर....?

बीरेन : नमस्ते पापाजी ! जी, मुझे ताँगा नहीं मिला, शायद....

रायसाहब : अजब अहमक है यह सईस। रास्ता तो एक ही है।

बीरेन : लेकिन कोई बात नहीं। मेरा भी एक काम बन गया।

रायसाहब : सामान कहाँ है ?

हेमलता : चेतू ! (पुकारते हुए) आया, चेतू को भेजना ! सामान....

बीरेन : सामान तो चौधरी जंगबहादुर की देख-रेख में स्टेशन ही छोड़ आया हूँ।

रायसाहब : यानी मिल गये तुम्हें भी चौधरी जंगबहादुर।

हेमलता : वही न पापा, जो हर गाड़ी पर किसी न किसी आने वाले को लेने के लिए जाते हैं ?

वीरेन : या किसी न किसी जाने वाले को पहुँचाने । मगर यह भी निराला शौक है कि बिला नागा हर गाड़ी पर स्टेशन जा पहुँचना ।

रायसाहब : दो ही तो गाड़ी आती हैं इस छोटे स्टेशन पर, लेकिन चौधरी की वजह से उस सूने स्टेशन पर रौनक हो जाती है ।

वीरेन : जी हाँ, जब तक उनसे मुलाकात नहीं हुई तब तक तो मुझे भी लगा कि पैसफिक सागर के टापू पर बहक गया हूँ ।

हेमलता : यहाँ चौरंगी की चहल-पहल की उम्मीद करना तो बेकार था वीरेन !

वीरेन : (ठहाका) याद है न बेकन की वह उक्ति, 'भीड़ के बीच में भी चेहरे गूँगी तसवीरें जान पड़ते हैं और बात-चीत घण्टियाँ, अगर कोई जाना-पहचाना न हो ।' लेकिन तुमने यह कैसे समझ लिया कि मुझे वीराना पसन्द नहीं ।""मैं तो चौधरी साहब से भी पल्ला छुड़ाकर भागा ।

रायसाहब : तो शायद उन्होंने तुम्हें समूची दास्तान सुनानी शुरू कर दी होगी ।

वीरेन : जी हाँ, यह बताया कि वे साल भर में एक बार, सिर्फ एक बार, कलकत्ते की रेस में बाजी लगाने जाते हैं । यह भी बताया कि गवर्नर साहब के जिस डिनर में उन्हें बुलाया गया था, उसका निमन्त्रण-पत्र अब भी उनके पास है और यह कि इस गाँव में अब तक जितनी बार कलक्टर आये हैं उनके दिन और तारीख उन्हें पूरी तरह याद हैं ।

हेमलता : गजब है !

रायसाहब : हाँ भाई, चौधरी की याददाश्त लाजवाब है ।

बीरेन : याददाश्त की दुनिया में ही रहते जान पड़ते हैं। इसलिए जब उन्होंने स्टेशन पर सामान की देखभाल का जिम्मा लिया तो मैंने भी छुटकारे की साँस ली और रास्ता छोड़कर खेतों की राह बस्ती की ओर चल दिया।

[आया का प्रवेश]

आया : बीरेन बाबू, पहले गर्म चाय पीजिएगा या फिर खाने का ही इन्तजाम.........

बीरेन : ओ, हलो आया कैसी हो ?

आया : मैं तो मजे में हूँ। लेकिन आपके आने से हमारी हेम बीवी के लिए चहल-पहल हो गयी, वरना.........

हेमलता : वरना क्या ? मुझे तो कलकत्ते की चहल-पहल से यहाँ का सूना संगीत ही भाता है।

रायसाहब : आया, हेम की उलटबाँसियाँ तुम न समझोगी।

बीरेन : लेकिन आया, अब मैं इस जंगल में मंगल करने वाला हूँ।

आया : भगवान् वह दिन भी जल्दी दिखावें ! मैं तो हेम बिटिया....

हेमलता : चुप रहो, आया !

रायसाहब : (ठहाका) हा, हा, हा।

बीरेन : मैं दूसरी बात कह रहा था। मेरा मतलब है इस गाँव की काया-पलट करना। यह गाँव मेरा इन्तजार कर रहा है, जैसे....जैसे....

हेमलता : जैसे वीणा के तार उस्ताद की उँगलियों का (किंचित् हास) खूब !

रायसाहब : (हँसते हुए) हा, हा, हा ! बीरेन, है न मेरी बिटिया लाजवाब?

बीरेन : लेकिन वीणा के सुर में वह मस्ती कहाँ जो एक नयी दुनिया के निर्माण में है ?

हेमलता : (व्यंग्य) कोलम्बस !

रायसाहब : नयी दुनिया का निर्माण। यह कोई दिलचस्प बात जान पड़ती है बीरेन ! सुनें तो.........

बीरेन : जिस रास्ते से····शार्टकट से····मैं आया हूँ, उससे लगी हुई जो जमीन है, थोड़ी ऊँची और समतल, उसे देखकर मेरी तबीयत फड़क गयी और मैंने तय कर लिया कि····

आया : बीरेन बाबू !

बीरेन : (अपनी बात जारी रखते हुए) कि बिलकुल आइडियल रहेगी वह जगह ! बिलकुल मानों उसी के लिए तैयार खड़ी हो····

रायसाहब : किसके लिए ?

आया : सरकार, बीरेन बाबू की बातें तो सावन की झरी हैं, पर मुझे तो बहुतेरा काम पड़ा है ।

हेमलता : (चंचल) इन्हें खाना मत देना आया !

बीरेन : (उसी धुन में) कहता हूँ पापाजी, उससे बेहतर जगह····

रायसाहब : ना, भई, बीरेन ! पहले आया का हुक्म मान लो । हेम कमरा इन्हें दिखा दो । गर्म पानी का इन्तजाम तो होगा ही । जब तैयार हो जायें और खाना भी । तो आया, मुझे खबर दे देना ।

आया : लेकिन इस मौसम में बाहर रहियेगा देर तक तो····

रायसाहब : बस अभी आया । चौधरी साहब इस बीच में आये तो दो बात उनसे भी कर लूंगा ।

बीरेन : (जाते-जाते) लेकिन पापाजी, आप गौर करके देखिये, ग्रामोद्धार-समिति के लिए पहाड़ की तलहटी वाली जमीन से मौजूं और कोई जगह हो ही नहीं सकती । मैंने उन लोगों से····

(जाता है ।)

रायसाहब : ग्रामोद्धार-समिति ! ख्याल तो अच्छा है । एक जमाने में मैंने भी····(सामने देखकर) कौन ? चेतू । अरे तू यहाँ कैसे खड़ा है ?

चेतू : सरकार····

(रुक जाता)

रायसाहब : क्या गर्म पानी तैयार नहीं ?

चेतू : कर आया सरकार ! कमरा भी सफा है।

रायसाहब : ठीक।

चेतू : सरकार !

(झिझक कर रुक जाता है)

रायसाहब : क्या बात है चेतू ?

चेतू : सरकार वह तलहटी वाली जमीन !

रायसाहब : कौन जमीन ?

चेतू : जी नये साहब जिसे लेने की सोच रहे हैं।

रायसाहब : अरे बीरेन ! अच्छा वह जमीन, जहाँ वह ग्रामोद्धार-समिति बैठायेंगे।

चेतू : लेकिन सरकार, उस पर तो हम लोग अपना नया बसेरा कर रहे हैं। आठ-दस बाँस की कोठियाँ—झुरमुट—लग जायं तो वेड़ा पार हो जाय।

रायसाहब : अरे तुम मुसहरों का क्या ? जहाँ बैठ जाओगे, बसेरा हो जायेगा, लेकिन गाँव में जो उद्धार के लिए काम होगा....(घोड़े की टापों और ताँगे की आवाज) यह क्या ? ताँगा आ गया क्या ? देख भई, बीरेन बाबू का सामान उतार ला। (चेतू बाहर जाता है। ताँगा रुकने की आवाज) चौधरी साहब हैं क्या ?

बालेश्वर : (बाहर ही से बोलता हुआ आता है।) जी, चौधरी साहब ने ही मुझे भेजा है सामान के साथ। मेरा नाम बालेश्वर है, बी० पी० सिन्हा। और ये हैं करमचन्द बरैठा। (करमचन्द नमस्ते करता है।) बच्चू बाबू के चचेरे भाई हैं। मैं चौधरी साहब का भतीजा हूँ।

रायसाहब : कहाँ रह गये चौधरी साहब ?

बालेश्वर : जी, ताँगे में आने की वजह से उनके घूमने का कोटा पूरा नहीं हुआ तो फिर से घूमने गये हैं।

रायसाहब : (हँसते हुए) खूब !

करमचन्द : हम लोगों ने सोचा कि आपका सामान भी पहुँचा दें और आपके दर्शन भी हो जायें।

बालेश्वर : बात यह है कि देहात में कोई 'लाइफ' नहीं है।

करमचन्द : जब से शहर से लौटे हैं, जान पड़ता है कि बन्दी बन गये हैं। 'ट्रांस्पोर्टेशन आफ लाइफ !'

रायसाहब : क्या करते थे शहर में ?

बालेश्वर : करमचन्द तो इण्टरमीडिएट तक पढ़कर लौट आये और मैं····

करमचन्द : बात यह है कि इम्तहान के परचे ही बेढंगे बनाये थे किसी ने।

बालेश्वर : मैं तो बी० ए० कर रहा था और एक दफ्तर में किरानी की नौकरी के लिए भी दरख्वास्त दे दी थी, मगर सिफारिश की कमी की वजह से····

रायसाहब : किरानी ? तुम्हारे यहाँ तो कई बीघे खेती होती है।

बालेश्वर : पढ़ायी-लिखायी के बाद भी खेती ! पढ़े फारसी बेचे तेल।

करमचन्द : और फिर शहर की लाइफ की बात ही और है। खाने के लिए होटल, सैर के लिए मोटर, तमाशे के लिए सिनेमा।

रायसाहब : रहते कहाँ थे ?

बालेश्वर : शहर में रहने का क्या ? चार अंगुल का कोना भी काफी है।

करमचन्द : शहर की सड़कें यहाँ के बैठकखाने से कम नहीं। वह चहल-पहल, वह रंगीनियाँ।

रायसाहब : भई, यह तो तुम लोग गलत कहते हो। मैंने अपने बचपन और जवानी के अनेक सुहाने बरस यहाँ गुजारे हैं !

बालेश्वर : तब बात और रही होगी, जज साहब !

करमचन्द : और फिर छोटी उम्र में शहर की मनमोहक जिन्दगी से गाँव का मिलान करने का मौका कहाँ मिलता होगा।

रायसाहब : मनमोहक····खैर। आजकल क्या शगल रहता है ?

करमचन्द : गले पड़ी ढोलकी बजावे सिद्ध ! सोचा कुछ पढ़े-लिखे, जानकार लोगों का क्लब ही बना लें।

बालेश्वर : वह भी तो नहीं करने देते लोग।

रायसाहब : कौन लोग ?

करमचन्द : इस गाँव की पॉलिटिक्स आपको नहीं मालूम ?

रायसाहब : यहाँ भी पॉलिटिक्स है ?

बालेश्वर : जबरदस्त ! बात यह है कि मैं और करमचन्द तो ढंग से क्लब चलाना चाहते हैं। प्रेजीडेण्ट, दो वाइस-प्रेजीडेण्ट, एक सेक्रेटरी, दो ज्वायण्ट सेक्रेटरी, पाँच कमेटी मेम्बर।

करमचन्द : जी हाँ, यह देखिये ! (एक कागज निकाल कर रायसाहब को दिखाता है।) इस तरह लेटर-पेपर छपवाने का इरादा है। ऊपर क्लब का नाम रहेगा और....यहाँ हाशिये में सब पदाधिकारियों के नाम और....

बालेश्वर : लेकिन ठाकुरों की बस्ती में दो आदमी हैं, धरमसिंह और किशन-कुमारसिंह। कहते हैं, दोनों वाइस-प्रेजीडेण्ट उन्हीं के रहें और कमेटी में भी तीन आदमी। मैंने कहा कि एक ज्वायण्ट-सेक्रेटरी ले लो और दो कमेटी के मेम्बर।

रायसाहब : वे भी तो पढ़े-लिखे होंगे।

करमचन्द : जी हाँ, कॉलिज तक।

रायसाहब : तब ?,

करमचन्द : अपने को लाट साहब समझते हैं। कहते हैं, क्लब होगा तो उन्हीं के मोहल्ले में।

बालेश्वर : भला आप ही सोचिये, हम लोगों के रहते हुए ठाकुरों की बस्ती में क्लब कैसे खुल सकता है ?

करमचन्द : आप ही इन्साफ कीजिये, जज साहब।

रायसाहब : भाई, इसके लिए तुम बीरेन से बात करो। वह लो बीरेन आ गये।

बीरेन : (हेम के साथ आते हुए) पापाजी, ग्रामोद्धार-समिति वाली यह बात मैंने पूरी नहीं की।

रायसाहब : वीरेन, वह बात तुम इन लोगों को समझाओ। वे हैं बालेश्वर उर्फ बी० पी० सिन्हा और ये हैं करमचन्द बरैठा। गाँव के पढ़े-लिखे नौजवान! क्लब खोलना चाहते हैं। मैं चलता हूँ, देरी हो रही है। हेम बेटी, वीरेन को देर मत करने देना।

(चले जाते हैं।)

बीरेन : अच्छा तो गाँव में क्लब स्थापित करना चाहते हैं आप ?

बालेश्वर : जी हाँ, यह देखिये यह है हम लोगों का लेटर-पेपर और नियमावली का मसौदा। बात यह है कि····

बीरेन : आइये मेरे कमरे में चलिये, वहाँ इत्मीनान से बातें होंगी। इधर से चलिये। मैं अभी आया।

(बालेश्वर और करमचन्द जाते हैं।)

हेमलता : मैं यहीं हूँ। जल्दी करना, नहीं तो जानते हो, आया वह खबर लेगी कि····

बीरेन : तुम भी चलो न! क्या उम्दा मेरी योजना है। सुनकर फड़क जाओगी।

हेमलता : कमरे में चलूं ? उँह····देखते हो यह चाँदनी (बाहर दूर से सम्मिलित स्वर में गाने की आवाज) और सुनते हो यह स्वर, मानों चाँदनी बोलती हो !

बीरेन : (जाते-जाते शरारत भरे स्वर में) मैं तो देखता हूँ बस किसी का चाँद-सा मुखड़ा और सुनता हूँ तो अपने दिल की धड़कन (हाथ हिलाते हुए) टा····टा !

हेमलता : (मीठी मुसकान) झूठे।

(सम्मिलित संगीत-स्वर निकट आ रहा है,
स्त्री-पुरुष दोनों का स्वर)

चननिया छटकी मो का करो राम।
गंगा मोर मइया जमुना मोर बहिनी
चाँद सूरज दूनो भइया
मो का करो राम। चननिया छटकी....
सासु मोर रानी, ससुर मोर राजा
देवरा हवैं सहजादा मो का करो राम
चननिया छटकी मो का करो राम!

(गाने के बीच में चेतू का जल्दी से आना और
बाहर की तरफ चलना)

हेमलता : कौन चेतू? कहाँ जा रहे हो?

चेतू : जी....वह....वह....गाना।

हेमलता : बड़ा सुन्दर है।

चेतू : मेरी ही बस्ती की टोली है। हर पूनों की रात को गाँव के डगरे-डगरे घूमती है।

हेमलता : इधर ही आ रही है।

चेतू : सामने वाले डगरे में। वह देखिये। और देखिये उसमें वह लोचन भैया भी हैं।....

हेमलता : कहाँ?

चेतू : वह मिर्जई पहने। मैं चलता हूँ बीबीजी। वे लोग मुझे बुला रहे हैं....

(जाता है। गाने का स्वर निकट आकर दूर जाता है।)

"मो का करो राम....मो का करो राम।"

हेमलता : (अब स्वर मन्द हो गया है) "चननिया छटकी मो का करो राम।" ओह, कैसी मनोहर पीर है यह!

आया : हेम बीबी, हेम बीबी। इस ठण्ड में कब तक बाहर रहोगी?

हेमलता : (उच्च स्वर में) अभी आयी आया ! (फिर मन्द स्वर में) चाँदनी और मैं ! मैं और बीरेन ! लेकिन यह गाना और वह····· वह·····लोचन !

[विचार-मग्न अवस्था में प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[स्थान वही । पन्द्रह रोज बाद । समय सवेरे । बाहर से रायसाहब और एक व्यक्ति की बातचीत का अस्पष्ट स्वर और फिर थोड़ी देर में ठहाका मार-मार कर हँसते हुए रायसाहब का प्रवेश]

रायसाहब : हा, हा, हा ! वाह भाइ वाह ! सुना बेटी हेम ! हेम !

हेमलता : (नेपथ्य में) आयी पापा !

रायसाहब : हा, हा, हा !

[हेम का प्रवेश, हाथ में एक बड़ा-सा चित्र और ब्रश]

हेमलता : क्या बात हुई पापा ?

रायसाहब : हेम, हमारे चौधरी साहब भी लाजवाब हैं ! अभी तो मुझे फाटक पर छोड़ कर गये हैं । सवेरे की चहलकदमी में इनका साथ न हो तो मैं इस दिहात में गूंगा भी हो जाऊँ और बहरा भी ।

हेमलता : आप तो आज उनके घर तक जाने वाले थे ।

रायसाहब : गया तो था, यही सोचकर कि थोड़ी देर के लिए उनकी बैठक में भी चलूं, लेकिन बाहर से ही बोले, 'वहीं ठहरिये !'

हेमलता : अरे !

रायसाहब : कहने लगे, 'पहले मैं ऊपर पहुँच जाऊँ, तब आप कार्ड भेजियेगा और तब बैठक में जाना मुनासिब होगा ! कायदा जो है ।'

हेमलता : (हँसती है) ऐसी भी क्या अंग्रेजियत ?

रायसाहब : और भी तो सुनो । घर में उनका जो प्राइवेट कमरा है, उसमें बाहर एक घण्टी लगी है । जिसे भी अन्दर जाना हो, घण्टी

बजानी होती है। बिना घण्टी बजाये अगर कोई अन्दर आ गया तो चौधरी साहब उससे बात नहीं करते, चाहे उनकी बीबी हो।

हेमलता : मालूम होता है मनुस्मृति की तरह एटीकेट संहिता चौधरी साहब छोड़कर जायेंगे।

रायसाहब : लेकिन आदमी दिल का साफ बिलकुल खरा है,हीरे की मानिन्द! दूसरे के एक पैसे पर हाथ नहीं लगाता।

हेमलता : तभी शायद बीरेन ने उन्हें ग्रामोद्धार-समिति का आडीटर बनाया है।

रायसाहब : बीरेन से कह देना कि चौधरी साहब हिसाब में बहुत कड़े हैं। कह रहे थे कि चूंकि इस संस्था में उनका भतीजा बालेश्वर शामिल है, इसलिये इसकी तो एक-एक पाई पर निगाह रखेंगे।

हेमलता : बालेश्वर मुझे पसन्द नहीं। झगड़ालू आदमी है।

रायसाहब : झगड़ा तो गाँव की नस-नस में बसा है।

हेमलता : पहले भी ऐसा था पापा ?

रायसाहब : था, लेकिन ऐसी हठ-धर्मी नहीं थी; मैं यह नहीं कहता कि पहले, शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे, लेकिन····लेकिन····पहले, पढ़े-लिखे नौजवान गाँव में कम थे और····

हेमलता : पढ़े-लिखे नहीं, अधकचरे। टैगोर ने लिखा है न 'हाफ बेक्ड कल्चर।' लेकिन पापा क्या अब बीरेन का तूफानी जोश और उसकी पैनी :झ गाँव में काया-पलट कर देगी ?

रायसाहब : तुम क्या समझती हो ?

हेमलता : कह रहे थे न बीरेन उस रोज कि गाँव में क्रान्ति के लिए एक नये दृष्टिकोण की जरूरत है, एक नये मानसिक धरातल की····

रायसाहब : बीरेन बोलता खूब है! उसी का जादू है।

हेमलता : सैकड़ों की जनता झूम जाती है!

रायसाहब : उस दूसरी पार्टी का क्या हुआ। ग्राम-सुधार-समिति में शामिल हुई या नहीं ?

हेमलता : अभी तो नहीं। कल रात बहुत-सा वाद-विवाद चलता रहा। बीरेन देर से लौटे थे। पता नहीं क्या हुआ ?

रायसाहब : लेकिन आज तो नींव पड़ेगी समिति की।

हेमलता : हाँ, आप नहीं जाइयेगा उत्सव में पापा ?

रायसाहब : न बेटी, मैंने तो बीरेन से पहले ही कह दिया था कि मैं नहीं जा सकूंगा। मुझे....

[एक हाथ में कागज लिये, दूसरे से कुरते के बटन लगाते हुए बीरेन का प्रवेश।]

बीरेन : लेकिन पापाजी, चौधरी साहब तो आ रहे हैं।

रायसाहब : उन्हें ठीक स्थान पर बैठाना, नियम के साथ।

बीरेन : (हँसते हुए) उनकी पूरी देखभाल होगी। पापाजी, अगर आप वहाँ पहुँच नहीं रहे हैं तो यह तो देखिये मेरे भाषण का ड्राफ्ट।

रायसाहब : उसके हाथ से कागज लेते हुए) तुम तो बिना तैयारी के ही बोलते हो।

[कागज पढ़ने लगते हैं।]

बीरेन : जी हाँ, लेकिन आज तो ग्राम-सुधार-समिति की समूची योजना को गाँव के सामने रखना है....पढ़िये न।

रायसाहब : (पढ़ते हुए) बड़ी जोरदार स्कीम है।

बीरेन : जी, आगे और देखिये (हेम से) और हेम, समिति के भवन में जो चित्र टँगेंगे तुमने पूरे कर लिये ?

हेमलता : एक तो तैयार ही-सा है।

[चित्र की ओर संकेत करती है।]

बीरेन : यह....? बड़े चटकीले रंग हैं, बड़ा मनोहर नाच का दृश्य है........ खूब ! लेकिन....ये....इस कोने के अन्धेरे में ये कौन लोग हैं ?....

हेमलता : तुम क्या समझते हो ?

बीरेन : (रुककर सोचता-सा) जैसे निर्वासित भटके हुए प्राणी !

रायसाहब : (पढ़ते-पढ़ते) बीरेन, तुम्हारी ग्राम-सुधार-समिति में दिमागी कसरत तो बहुत है....पुस्तकालय, भाषण, अध्ययन-मण्डल....

बीरेन : (चित्र को अलग रखता हुआ) वही तो पापाजी ! ग्राम-जागृति के मानी क्या हैं ? अपनी जरूरतों और समस्याओं पर विचार करने की क्षमता, देहात की मूक-व्यथा को वाणी की आवश्यकता है। माँग है, चुने हुए ऐसे नौजवानों की जो धरती की घुटन को गगन के गर्जन का रूप दे सकें, जो रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठा सकें; जो आर्थिक प्रश्नों से माथापच्ची कर सकें। मैं समिति के पुस्तकालय में मार्क्स, लेनिन से लेकर स्पेंग्लर, रसेल इत्यादि सभी ग्रन्थों का अध्ययन कराऊँगा। एक नयी रोशनी, एक नया मानसिक मन्थन ....इंटलैक्चुअल फरमेंट....

रायसाहब : ठीक, बीरेन ठीक ! बातें तो बहुत होंगी, लेकिन भई, देहात की गरीबी और गन्दगी को देखकर तो मन उचाट होता है।

बीरेन : (जोश के साथ) यह आपने ठीक सवाल उठाया। गरीबी और गन्दगी ! पापाजी, इस गरीबी और गन्दगी को देखकर मेरा मन क्रोधाग्नि से जल जाता है। वे बे-घरवार के बूढ़े-बच्चे, वह भूखे भिखमंगों की टोली, चीथड़ों में सिकुड़ी औरतें........इन सबके ध्यान मात्र से दया का सागर उमड़ उठता है। लेकिन दया के सागर में क्रोध के तूफान की जरूरत है पापाजी ! तूफान, जो न थमना जाने, न चुप रहना। और इस तूफान को कायम रखने के लिए चाहिए कुछ ऐसी हस्तियाँ, जो उस क्रोध और दया के काबू में न आकर भी उसी के राग को छेड़ सकें, वकील की तरह पूरे जोश के साथ जिरह कर सकें। लेकिन मुविक्कल से अलग भी रह सकें।

हेमलता : सरोवर में कमल, लेकिन जल से अछूता !

बीरेन : हाँ, उसी की जरूरत है। जो लोग इस गरीबी और गन्दगी की

दलदल से दूर रह कर उसमें फँसी दुनिया के बेबस अरमानों को समाज के सामने मुस्तैदी के साथ चुनौती का रूप दे सकें। (रुककर भाषण के स्तर से उतरता हुआ) लेकिन मुझे तो चलना है पापाजी! पहले से जाकर समिति की कुछ उलझनें सुलझानी हैं, जिससे उत्सव के वक्त फसाद न हो।.........तुम तो थोड़ी देर में आओगी हेम? तब तक इस चित्र को ठीक-ठाक कर लो। अच्छा तो मैं चला।

[चला जाता है। कुछ देर चुप्पी रहती है।]

रायसाहब : यही तो जादू है वीरेन का।

हेमलता : जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले।

रायसाहब : कभी-कभी मुझे तो देहात में उलझन-सी लगती है। बरसों बाद आया हूँ....जैसे चश्मा शहर ही छोड़ आया हूँ....और वीरेन है कि आते ही गाँव को अपना लिया।

हेमलता : मालूम नहीं पापाजी, उन्होंने गाँव को अपना लिया....या....

[चेतू का प्रवेश]

चेतू : सरकार का नाश्ता तैयार है।

रायसाहब : (आते हुए) अच्छा चेतू! आता हूँ। (चलते-चलते चित्र पर निगाह जाती है।) हेम! यह तसवीर अच्छी बनी है।

हेमलता : थोड़ा टच करना बाकी है।

रायसाहब : नाचने वालों की टोली में बड़ी लाइफ है। रंग की भी, गति की भी! लेकिन....कोने में यह लोग कैसे खड़े हैं?

हेमलता : आप क्या समझते हैं?

रायसाहब : (सोचते-से सप्रयास) जैसे.........जैसे सूखे और सूने दरख्त जिन्हें धरती से खूराक ही नहीं मिलती।

हेमलता : पापा, आप भी तो कवि हैं।

रायसाहब : (हँसते हैं।) तुम्हारा बाप भी जो हूँ।.... अच्छा मैं तो चला।

[चले जाते हैं।]

हेमलता : (विचार-मग्न) सूखे और सूने दरख्त !........या निर्वासित और भटके प्राणी !....नहीं....नहीं कुछ और, (चेतू से) चेतू, जरा लाना वह स्टूल, यहीं बैठकर जरा इसे ठीक करूँ।

चेतू : (स्टूल रखता हुआ) यह लीजिये। रंग भी यहीं रख दूँ ?

हेमलता : लाओ, मुझे दो। अब तो तुम्हें मेरी तसवीर खींचने की झक की आदत हो गयी है।

[रंग तैयार करने लगती है।]

हेमलता : चेतू !

चेतू : जी, बीबी जी।

हेमलता : देखो, थोड़ी देर में यह तसवीर लेकर तुम्हें मेरे साथ चलना है।

चेतू : कहाँ ?

हेमलता : बीरेन बाबू की समिति का जलसा जहाँ हो रहा है, वहीं पहाड़ी की तलहटी पर।

चेतू : (झिझकता हुआ) बीबीजी, वहाँ मैं नहीं जाऊँगा।

हेमलता : क्यों ?

चेतू : बीबीजी, वहाँ हम गरीब मुसहर अपना बसेरा करने वाले थे। हम बाँस की पौध लगा रहे थे। मेहनत करके टोकरी बनाते, घर तैयार करते। बाँध होता तो खेत भी....

हेमलता : (चित्र बनाते-बनाते) लेकिन ग्रामोद्धार-समिति से भी तो आखिर तुम लोगों की तकलीफें दूर होंगी।

चेतू : पता नहीं बीबीजी। समिति में बहुत देर तक बहसें तो होती हैं। पर....

हेमलता : और फिर बीरेन बाबू के दिल में तुम लोगों के लिए कितना ख्याल है, कितनी दया है।

चेतू : (किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत हो) हमें दया नहीं चाहिए।

हेमलता : (चौंककर उसकी ओर मुड़ती है।) दया नहीं चाहिए ? चेतू ! यह तुमसे किसने कहा ?

चेतू : (कुछ सकपका कर) बीबीजी, लोचन भैया कहते हैं कि''''

(सड़क पर से सम्मिलित स्वर में नारों की आवाज)

ग्रामोद्धार-समिति जिन्दाबाद !

बी० पी० सिन्हा जिन्दाबाद !

गद्दारों का नाश हो !

ग्रामोद्धार-समिति जिन्दाबाद !

(आवाज दूर हो जाती है।)

हेमलता : चेतू, यह सब क्या है ?

(खड़ी होकर देखने लगती है।)

चेतू : उत्सव में ही जा रहे हैं। बालेश्वर बाबू की पार्टी के लोग हैं। करमचन्द बाबू इनसे अलग हो गये हैं और ठाकुर पार्टी के लोगों में जा मिले हैं।

हेमलता : कल रात झगड़ा तय नहीं हुआ ?

चेतू : पता नहीं''''यह देखिए दूसरी पार्टी के लोग भी जा रहे हैं। कहीं झगड़ा न हो जाय।

(सड़क पर से दूसरे दल के नारों का शोर सुनाई देता है।)

करमचन्द की जय हो !

करमचन्द की जय हो !

ग्रामोद्धार-समिति हमारी है !

ग्राम-जागृति जिन्दाबाद !

स्वार्थी सिन्हा मुर्दाबाद !

(आवाज दूर हो जाती है।)

हेमलता : (चिन्तित स्वर में) चेतू, ये लोग तो लाठी लिये हुए हैं।

चेतू : जी हाँ, पहली पार्टी भी लैस थी।

(नेपथ्य में पुकारते हुए आया का प्रवेश)

आया : चेतू, ओ चेतुआ ! देख तो यह क्या फसाद है ?

चेतू : बालेश्वर बाबू और करमचन्द की पार्टियाँ हैं। दोनों बीरेन बाबू के उत्सव में गई हैं।

हेमलता : लाठी-डण्डा लिये हुए आया ?

आया : और तू यहीं खड़ा है चेतुआ। अरे, जल्दी जा दौड़कर चौकीदार से कह कि थाने में खबर कर दे। क्या मालूम क्या झगड़ा हो जाय। जल्दी जा। लाठी चल गई तो बीरेन बाबू घिर जायेंगे।…जल्दी दौड़ जा !

(चेतू तेजी से जाता है।)

हेमलता : मैं भी जाऊँगी, आया। बीरेन अकेले हैं।

आया : न बीबीजी, तुम्हें न जाने दूँगी। (जाते हुए चेतू को पुकारते हुए) चेतू, लौटते वक्त जलसे में झाँकता आइयो (हेम से) हेम बीबी, कहाँ की इल्लत मोल ले ली बीरेन बाबू ने !

हेमलता : उनकी बात तो सब लोग सुनेंगे।

आया : बीबीजी, तुमने अभी तक नहीं समझा गाँव-गँवई के मामलों को। यहाँ भले मानसों का बस नहीं है। अपना तो वही कलकत्ता अच्छा।

हेमलता : (झिड़कते स्वर में) आया तुम तो बस….

आया : मैं ठीक कह रही हूँ बीबीजी। अभी तुम लोगों को पन्द्रह दिन हुए हैं यहाँ आये। देख लो, बड़े सरकार की तबीयत ऊबी-सी रहती है ! चौधरी न हों तो एक दिन काटना मुश्किल हो जाय। और तुम हो….

हेमलता : मुझे तो अच्छा लगता है। कई स्केच बना चुकी हूँ।

आया : अरे, तसवीरें तो तुम कलकत्ते में भी बना लोगी। अन-गिनती और इनसे अच्छी।

हेमलता : तुम तो, आया, उलटी बातें करती हो। आखिर हम लोग गाँव की ही औलाद हैं। यह धरती हमारी माँ है। अब हम लोग फिर यहाँ आकर रहना चाहते हैं। इसकी गोदी में आना चाहते हैं।

आया : अब बीबीजी, इतनी हुसियार तो मैं हूँ नहीं जो तुम्हें समझा सकूँ। पर इतना कहे देती हूँ कि उखाड़े हुए पौधे की जड़ में हवा लग जाये तो फिर दुबारा जमीन में गाड़ना बेकार है। उसके फूल तो बँगले के गुलदस्तों की ही शोभा बढ़ायेंगे।

हेमलता : (अचम्भित आया को देखती रह जाती है।) आया तुम्हारी बात···· तुम्हारी बात····खौफनाक है!

(नेपथ्य से आवाजें 'इधर····इधर····ले जाओ, सम्हल कर····चेतू तुम हाथ पकड़ लो····इधर····इधर')

आया : हैं! यह कौन आ रहा है? (बाहर की ओर देखते हुए) अरे,यह तो बीरेन बाबू को पकड़े दो आदमी चले आ रहे हैं। घायल, हो गये क्या? बाप रे!····

(दौड़कर बाहर की तरफ जाती है।)

हेमलता : (घबराकर) बीरेन, बीरेन! (बँगले की तरफ पुकारते हुए)···· पापाजी, पापाजी इधर आइये!

रायसाहब : (नेपथ्य में) क्या हुआ?

हेमलता : बीरेन घायल हो गये। ओह!····

(बेहोश बीरेन को लाठियों के स्ट्रेचर पर सम्हाले हुए, चेतू और एक व्यक्ति, जिसकी अपनी बाँह पर घाव है, प्रवेश करते हैं। वह इस परिस्थिति में भी स्थिरचित्त जान पड़ता है। उसकी वेश-भूषा चेतू की-सी है।)

आया : (घबड़ाई हुई) चेतू, ये तो बेहोश हैं। हाय····राम!

(स्ट्रेचर जमीन पर रख दी जाती है।)

व्यक्ति : घबड़ाइये नहीं।

हेमलता : (स्ट्रेचर के पास घुटने टेकती हुई) बीरेन! बीरेन!

(रायसाहब घबराये हुए प्रवेश करते हैं।)

रायसाहब : क्या हुआ? हैं! ये तो बेहोश हैं।····चेतू क्या हुआ?

चेतू : सरकार, दोनों पार्टी के लठैत भिड़ गये। बीच में आ गये बीरेन बाबू। वह तो लोचन भैया ने जान पर खेलकर बचा लिया, वरना····

व्यक्ति : इन्हें फौरन मकान के अन्दर पहुँचाइए। पट्टी-वट्टी है घर में ?

हेमलता : बीरेन ! बीरेन !

रायसाहब : आया, जल्दी अन्दर ले चलो····चेतू, सम्हाल कर लिटाना। हेम, मेरी ऊपर वाली आलमारी में लोशन है, जल्दी····जल्दी····(बीरेन को पकड़कर आया, चेतू और हेम जाते हैं।) और यह लोचन कौन है ?

व्यक्ति : मेरा ही नाम लोचन है।

रायसाहब : तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया। यह लो दस रुपये और जरा दौड़ जाओ, थाने के पास ही डाक्टर रहते हैं।

लोचन : आप रुपये रखें। मैं डॉक्टर के पास पहले ही खबर भेज आया हूँ। आते ही होंगे।

रायसाहब : (कुछ हतप्रभ) तुम····तुम इसी गाँव के हो ?

लोचन : हूँ भी और नहीं भी।····आप बीरेन बाबू को देखें !

रायसाहब : (संकुचित होकर) हाँ····आँ····हाँ····

(जाते हैं। लोचन कमर में बँधे कपड़े को फाड़कर अपनी बायीं भुजा में बहते हुए घाव पर पट्टी बाँधता है, तसवीर को सीधा उठा कर रखता है और गौर से देखता है। इतने में तेजी से हेमलता का प्रवेश।)

हेमलता : तुम्हारा ही नाम लोचन है ?

लोचन : जी !

हेमलता : तुम्हीं ने बीरेन की जान बचायी है। (प्रसन्न स्वर में) वे होश में आ गये हैं। हम लोग बड़े अहसानमन्द हैं।

लोचन : (स्पष्ट स्वर में) जान मैंने नहीं बचायी।

हेमलता : तुम्हारी बाँह पर भी तो चोट है।

लोचन : जान उन गरीब मुसहरों ने बचायी है जिनसे जमीन छीनकर बीरेन बाबू ग्रामोद्धार-समिति का भवन बनवा रहे हैं। जब समिति के क्रान्तिकारी नौजवान आपस में लाठी चला रहे थे, तब यही गरीब बीरेन बाबू को बचाने के लिए मेरे साथ बढ़े। (व्यंगपूर्ण मुस्कान) क्रान्ति का दीपक बच गया!

हेमलता : (हिचकिचाती हुई) तुम""आप पढ़े-लिखे हैं ?

लोचन : पढ़ा-लिखा ? (वही मुस्कान) हाँ भी और नहीं भी।""अच्छा चलता हूँ।""हाँ, यह तसवीर आपने बनायी है ?

हेमलता : कोई त्रुटि है क्या ?

लोचन : नहीं ! आपने हमारे नाच की गति को रेखाओं और रंगों में खूब बाँधा है। और""

हेमलता : और ?

लोचन : कोने में खड़े छाया में लपटे ये व्यक्ति""

हेमलता : कैसे हैं ?

लोचन : (बिना झिझक के) जैसे अपनी ही जंजीरों से बँधे बन्दी !

हेमलता : बन्दी क्यों ?

लोचन : (वही मुस्कान) यह फिर बताऊँगा। (चलते हुए)

हेमलता : अच्छा नमस्ते !

(लोचन चला जाता है। हेमलता अचरज में खड़ी रह जाती है। फिर चित्र उठाकर घर की तरफ जाती है।)

हेमलता : (जाते-जाते मन्द स्वर में) बन्दी ! अपनी ही जंजीरों में बँधे बन्दी""

[पर्दा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

(वही स्थान । एक हफ्ते बाद । समय सन्ध्या । नौकर लोग मकान से बगीचे में होकर बाहर की ओर सामान लाते नजर पड़ते हैं । कभी-कभी आया की दबंग आवाज सुन पड़ती है, कभी चेतू की, कभी और लोगों की)

'वह बिस्तरा दो आदमी पकड़ो !'

'सम्हाल कर भई !'

'बक्से में चीनी के बर्तन हैं ।'

'जल्दी''''जल्दी ।'

'यह टोकरी दूसरे हाथ में पकड़ो !'

(घर की तरफ से आया का ध्यस्त मुद्रा में जल्दी-जल्दी आना । बाहर से चेतू आता है ।)

आया : सब सामान लद गया चेतू ?

चेतू : हां आया ! बस, बड़े सरकार का अटैची रहा है । उनके आने पर बन्द होगा ।

आया : कहां गये सरकार ?

चेतू : चौधरी जी के यहां विदा लेने । सुना है, चौधरी के बचने की उम्मीद नहीं ।

आया : जिस गांव में भतीजा अपने चचा पर वार कर बैठे वहां ठहरना धरम नहीं ।

चेतू : अभी जमानत नहीं मिली बालेश्वर बाबू को ।

आया : अब हमें क्या मतलब ? हम तो कलकत्ते पहुँच कर शान्ति की सांस लेंगे ।

चेतू : शान्ति !

आया : तू तो बुद्धू है चेतू । चल कलकत्ते । मौज उड़ायेगा । देखेगा बहार और बजायेगा चैन की बंसी ।

चेतू : गांव छोड़कर ? नौकरी ही करनी है तो अपनी धरती पर करूँगा ।

आया : अरे, शहर में नौकरी भी न करेगा तो भी रिक्शा चलाकर डेढ़-दो सौ महीना कमा लेगा।

चेतू : डेढ़-दो सौ ?

आया : हाँ, और रोज शाम को सनीमा। होटल में चाय। चकचकाती सड़कें, जगमगाते महल, ठाठ से रहेगा।

चेतू : (विरक्त मुद्रा) खाना किराये का, रहना किराये का और बोली किराये की।

आया : जैसो तेरी मर्जी ! भुगत यहीं देहात के संकट।

चेतू : लोचन भैया तो कहत····

आया : (भिड़कती हुई) चल, चल, लोचन भैया के बाबा। अन्दर जाकर देख; बीरेन बाबू तैयार हों तो सहारा देकर लिवा ला। हेम बीबी तो तैयार हैं ?

चेतू : अच्छा !

(अन्दर जाता है।)

आया : (जाते-जाते) देखूं गाड़ी पर सामान ठीक-ठीक लदा है या नहीं। ये देहाती नौकर····

(बाहर जाती है। थोड़ी देर में रायसाहब और लोचन का बातें करते हुए बाहर से प्रवेश)

रायसाहब : भई लोचन, मुझसे यहाँ नहीं रहा जायगा। अच्छा हुआ जाते वक्त तुम आ गये। बीरेन ने तुम्हें देखा नहीं। चलते वक्त उस दिन के एहसान के लिए····

लोचन : मैंने सोचा था कि आप लोग रुक जायेंगे।

रायसाहब : रुकना ? आया तो इसी विचार से था कि कलकत्ते के बाद देहात में ही दिन काटूंगा। लेकिन एक महीने में देख लिया कि हम तो इस दुनिया से निर्वासित हो चले ! बरसों पहले की दुनिया उजड़ गयी और मैं जिस समाज में बसने आया वह ख्वाब हो चला ! चौधरी भी शायद उसी ख्वाब के झटके हुए टुकड़े थे। अभी उन्हें

देखकर आ रहा हूँ। उम्मीद नहीं है बचने की। उस दिन के झगड़े में बालेश्वर ने उन पर लाठी से वार नहीं किया, दिल को भी चकनाचूर कर दिया।

लोचन : बालेश्वर ही गाँव की नयी पीढ़ी नहीं है।

रायसाहब : (निराश स्वर में) मैं नहीं जानता कि कौन नयी पीढ़ी है। बस, इतना देखता हूँ कि रैयत के सुख-दुःख में हाथ बँटाने वाला जमींदार, पुरखों के तजुर्बे के रक्षक बुजुर्ग, बेफिक्री की हँसी और बड़ों की इज्जत में पले हुए नौजवान····जब ये सब ही नहीं रहे तो गाँव में ठहर कर मैं क्या करूँ! शहर····

लोचन : शहर आपको खींच रहा है रायसाहब!

रायसाहब : (लाचारी का स्वर) तुम शायद ठीक कहते हो। शहर मुझे खींच रहा है!

लोचन : अरे आप बेबस····खिंचे जा रहे हैं।

रायसाहब : (पीड़ित मुद्रा) बेबस····बेबस····ऐसा न कहो लोचन, ऐसा न कहो!····हम जा रहे हैं क्योंकि····क्योंकि····

(चेतू का सहारा लिए बीरेन का प्रवेश, साथ में हेम भी है।)

बीरेन : पापाजी, अब आप ही की देरी है।

रायसाहब : (मानों मुक्ति मिली हो) कौन? बीरेन, हेम! तैयार हो गये तुम लोग? तो मैं भी अपना अटैची ले आता हूँ। चेतू, मेरे साथ तो चल!

(घर की तरफ प्रस्थान : साथ में चेतू)

लोचन : (हेमलता से) नमस्ते!

हेमलता : कौन?····अच्छा आप? बीरेन, यही हैं लोचन, जिन्होंने उस रोज तुम्हें बचाया था।

बीरेन : अच्छा! उस दिन तो तुम्हें देखा नहीं था, लेकिन फिर भी (गौर से देखता हुआ) तुम पहचाने-से लगते हो।

लोचन : (मुस्कराते हुए) कोशिश कीजिए। शायद पहचान लें।

बीरेन : (सोचते हुए) तुम''''वह''''वह''''नहीं नहीं। वह तो ऊँची जाति का, ऊँचे कुल का आदमी था।

हेमलता : कौन ?

बीरेन : मेरा कॉलेज का साथी एल० एस० परमार।

लोचन : (मुस्कुराहट) एल० एस० परमार।''''लोचन सिंह परमार।

बीरेन : (चौंककर) ऐं ! परमार''''परमार !!

लोचन : (अविचलित स्वर में) हाँ, मैं परमार ही हूँ, बीरेन !

हेमलता : (विस्मित) बीरेन, यह तुम्हारे कॉलेज के साथी हैं ?

बीरेन : (लोचन का हाथ पकड़कर) यकीन नहीं होता परमार, कि तुम्हीं हो इस देहाती वेश में, मुसहरों के बीच। कॉलेज छोड़कर तो तुम ऐसे गायब हुए थे कि''''

लोचन : (किंचित् हँसी) एक दिन मैंने तुम लोगों को छोड़ा था और आज (रुककर) आज, तुम जा रहे हो !

बीरेन : परमार, मैं जा रहा हूँ चूँकि मैं अपने आदर्श को खण्डित होते नहीं देख सकता।

लोचन : आदर्श ? कौन-सा वह आदर्श है जिसे गाँव खण्डित कर देगा ?

बीरेन : क्रान्ति का आदर्श, परमार ! मैं भूल गया था कि देहात की मध्य-युगीन ऊसर भूमि अभी क्रान्ति के लिए तैयार नहीं है। उसके लिए जरूरत है शहर और कारखानों की सजग और चेतनाशील भूमि की।''''

लोचन : (तीव्र दृष्टि) बीरेन, तुम भाग रहे हो।

बीरेन : मैं लाठियों की मार से नहीं डरता, लोचन।

लोचन : तुम भाग रहे हो लाठियों के डर से नहीं, बल्कि उन गुटबन्दियों, अन्धविश्वास और झगड़े-फसाद की दल-दल के डर से,-जिसे तुम एक छलाँग में पार कर जाना चाहते थे। (गम्भीर चुनौतीपूर्ण स्वर में) तुम पीठ दिखा रहे हो, बीरेन !

बीरेन : (हठात् विचलित) पीठ दिखा रहा हूँ....नहीं....नहीं....यह गलत है ।....हम जा रहे....हैं, क्योंकि....क्योंकि....

(आया का तेजी से प्रवेश)

आया : हेम बीबी ! बीरेन बाबू !! अरे आप लोगों को चलना नहीं है क्या ? सारा सामान रवाना भी हो गया । कहीं गाड़ी छूट गयी तो ....कहाँ है बड़े सरकार ? आप लोग भी गजब करते हैं ।

(रायसाहब का प्रवेश साथ में चेतू अटैची लिए हुए)

रायसाहब : यह आ गया मैं । चलो भाई; आया । बीरेन, तुम चेतू का सहारा लेकर आगे बढ़ो; पहले तुम्हें बैठना है ।

बीरेन : मैं चलता हूँ परमार ? फिर कभी....

लोचन : फिर कभी (किंचित् हँसी) फिर कभी !....

(आया अटैची लेती है, चेतू का सहारा लिए हुए बीरेन बाहर जाता है । पीछे-पीछे आया ।)

रायसाहब : अच्छा भाई लोचन, हम भी चलते हैं....मुमकिन है तुम्हारा कहना सही हो !

लोचन : काश, मैं आपको रोक पाता !....

रायसाहब : हेम, तुम्हारी तसवीर उधर कोने में रखी रह गयी ।

हेमलता : अभी लायी पापा, आप चलिए ।

रायसाहब : अच्छा !

(चलते हैं ।)

लोचन : आप भी जा रही हैं हेमलताजी !

हेमलता : मजबूर हूँ ।

लोचन : मैं जानता हूँ । बीरेन का मोह ।....

हेमलता : मैं बीरेन को यहाँ रख सकती थी लेकिन....

लोचन : लेकिन !

हेमलता : (सत्य की खोज से अभिभूत वाणी) लेकिन एक बात है जिसे न

पापा समझते हैं, न बीरेन। पर मैं कुछ-कुछ समझ रही हूँ। पापा गाँव को लौटे प्रतिष्ठा और अवकाश से सराबोर होने, बीरेन ने देहात की क्रान्ति की योजना का टीला बनाना चाहा और मैं···· मैं गाँव की मोहक झाँकी में कल्पना का महल बनाने को ललक पड़ी।

लोचन : महल मिटने को बनते हैं, हेमजी!

हेमलता : यह मैं जानती हूँ, लेकिन हम तीनों यह न समझ सके कि हमारी जड़ें कट चुकी हैं, हम गाँव के लिए बिराने हो चुके हैं।········ (आविष्ट स्वर) क्या आप इस दुविधा, इस उलझन, इस पीड़ा के शिकार नहीं हुए हैं? एक तरफ गाँव और दूसरी तरफ नागरिक शिक्षा-दीक्षा और सभ्यता की मजबूत जकड़! उफ! कैसी भयानक है यह खाई जिसने हमारे तन, हमारे मन, हमारे व्यक्तित्व को दो टूक कर दिया है? बताइये कैसे यह दुविधा मिट सकती है? कैसे हम धरती की गन्ध, धरती के स्पर्श को पा सकते हैं? बताइये····बताइये!

आया : (नेपथ्य में) हेम बीबी, हेम बीबी! जल्दी आओ देरी हो रही है।

लोचन : आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास है, लेकिन आप तो जा रही हैं।

हेमलता : जाना ही है। आप मेरे लिए पहेली ही बने रहेंगे।····वह तसवीर आपके लिए छोड़े जा रही हूँ। नमस्ते!

[जाती है।]

लोचन : (कुछ देर बाद आप-ही-आप धीरे-धीरे) पहेली········(तसवीर उठाता है।) और ये बन्दी हैं! (तसवीर की ओर एकटक देखता है।) मैं जानता हूँ····(गहरी साँस) मैं जानता हूँ कि कौन-सी जंजीर है जो इन्हें बन्द किये है। (नेपथ्य में ताँगे के चलने की आवाज) जा रहे हैं वे लोग! और मैं बता भी न पाया!········ कैसे बताऊँ········कैसे बताऊँ कि यह कुदालो और ये मेहनत-कश हाथ, यही वे तिलिस्मि हैं जिनमें मैं धरती के भेद पाता हूँ। ये

मेरी आजाद दुनिया के सन्देश-वाहक हैं, यही वह वाणी है जो मुझे गरीबी के लोक में अपनापन देती है… (रुककर) तुम लोग जा रहे हो। बचकर भाग रहे हो……लेकिन मैं ?………क्या मैं अकेला हूं ?…(विश्वासपूर्ण स्वर में) अकेला ही सही, लेकिन बन्दी तो नहीं। (इस बीच में चेतू आकर खड़ा-खड़ा लोचन की स्वगत-वार्ता को सुनने लगता है।)

चेतू : लोचन भैया !

लोचन : कौन ?

चेतू : लोचन भैया, आप तो अपने आप ही बातें करते हैं !

लोचन : चेतराम !……मैं भूल गया था।

चेतू : क्या भूल गये थे भैया ?

लोचन : कि मैं अकेला नहीं हूं।

चेतू : अकेले ?

लोचन : हां, और यह भी भूल गया कि हमारी दुनिया में बेकार बातें करने का समय नहीं है।

चेतू : काम तो बहुत है ही भैया ! अब वह जमीन वापस मिली है तो……

लोचन : चलो, चेतराम तलहटी वाली जमीन पर खुदाई शुरू करें, आज ही।

चेतू : जी, बांस के झुरमुट भी तो लगायेंगे।

लोचन : हां, और बांध भी बांधेंगे।

चेतू : अगली बरखा तक खेत तैयार करेंगे।

लोचन : (उल्लासपूर्ण वाणी) चलो हम रोज सांझ को अपने पसीने के दर्पण में कभी न मिटने वाली झांकी देखेंगे। चलो चेतराम।

[कन्धे पर कुदाल और बगल में चेतराम को लेकर प्रस्थान करता है। नेपथ्य में वाद्य-संगीत जो ओजस्विनी लय में परिवर्तित हो जाता है।]

●

और वह जा न सकी

●

विष्णु प्रभाकर

पात्र

शैलेन्द्र : एक प्रसिद्ध लेखक,
शारदा : शैलेन्द्र की पत्नी,
शरत् : उनका पुत्र,
शशि : एक पड़ोसिन,
श्रीधर : परिवार का मित्र,
सखी : शारदा की सखी,
शीला : शैलेन्द्र की प्रशंसक एक महिला ।
एक अन्य मित्र ।

[शैलेन्द्र कमरे में लेटा हुआ किताब पढ़ रहा है। पत्नी तेजी से बड़बड़ाती हुई बाहर से आती है और निकल जाती है। शरत् भड़भड़ाता हुआ कमरे में दाखिल होता है।]

शरत् : (तख्त पर चढ़कर) पिताजी, डॉक्टर ने कहा है कि अम्मा की उँगली कटेगी।

शैलेन्द्र : (धीरे से) नीचे उतरो।

शरत् : (पूर्ववत्) अम्मा की उँगली कटेगी।

शैलेन्द्र : मैं कहता हूँ, नीचे उतरो, जाओ। जाओ भाई, उतर जाओ।

शरत् : (रुआँसा) हम कहते हैं, अम्मा की उंगली कटेगी !

शैलेन्द्र : ओपफो। तो रोते क्यों हो ? कहाँ है अम्मा ? क्या हुआ उँगली को ?

शरत् : अम्मा की उँगली में फुन्सी निकली है। डॉक्टर ने उसे काटने को कहा है।

शैलेन्द्र : ओहो, यह बात थी ! आप अम्मा के साथ डॉक्टर के यहाँ गये थे ! जाओ, जाओ, मुझे पढ़ने दो। बाहर खेलो, जाओ।

शारदा : (दूर से आता स्वर) शरत्, जाओ, मैं दूध रख आयी हूँ। जाओ, पियो। (पास आ जाती है।) लीजिये।

शैलेन्द्र : क्या है, शारदा ?

शारदा : दूध।

शैलेन्द्र : लाओ।

शारदा : मैंने कहा कि घर में आटा नहीं है।

शैलेन्द्र : (पीते-पीते) तुमने दूध पी लिया, शारदा ?

शारदा : मैंने कहा कि आटा नहीं है घर में।

शैलेन्द्र : सो तो अन्नपूर्णा जाने।

शारदा : (तीव्र तलखी) अन्नपूर्णा गयी भट्टी में ! मुझे आटा चाहिए ।

शैलेन्द्र : शारदा संगीत की देवी है, उसका स्वर इतना कर्कश नहीं होना चाहिए ।

शारदा : आग लगे संगीत में ! मैं पूछती हूँ कि आप अपनी काहिली और निकम्मेपन को बातों के पीछे क्यों छिपाते हैं ? कुछ करते क्यों नहीं ? यदि ऐसे ही जीवन बिताना था तो शादी क्यों की ? क्यों शहर में आकर बसे ? कहीं जंगल में जाकर रहते ! कान खोलकर सुन लो, मैं अब इस तरह आपका घर नहीं चला सकती ।

शैलेन्द्र : मेरा घर ? किसने कहा कि घर मेरा है ? घर तो घरवाली का होता है ।

शारदा : मैं अब इन बातों में आनेवाली नहीं हूँ । अगर रोटी खानी है तो उठकर बाजार जाओ और गेहूँ लेकर आओ ।

शैलेन्द्र : आ जायेंगे गेहूँ । तुम दूध पियो जाकर ।

शारदा : मैं कहता हूँ, इस तरह काम नहीं चलेगा । मुझे आज फैसला करना है ।

शैलेन्द्र : फैसला करना है ? किस बात का ?

शारदा : इस बात का कि आपको काम करना है या नहीं ? आप अभी कुछ सोचते भी हैं कि····

शैलेन्द्र : (बीच में) यही तो मुसीबत है ! इतना सोचता हूँ कि फ़ुरसत नहीं मिलती ।

शारदा : खाक सोचते हो ! कुछ सोचते तो ये दिन देखने पड़ते ? तुम तो एकदम निकम्मे हो गये हो, तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि घर को दियासलाई ही दिखा दो !

शैलेन्द्र : ठीक कहती हो, शारदा ! मैं दियासलाई का भी प्रयोग नहीं जानता । काश कि मैं उसे ज़ला सकता ! जला पाता तो प्रकाश न हो जाता ? अब तो निरे अन्धकार में भटक रहा हूँ ।

शारदा : (तिलमिलाकर) उफ्, उफ्....तुमसे बातें करना सरदर्द मोल लेना है। मैं तुमसे जवाब नहीं माँगती, बहस नहीं करती। केवल इतना सूचित करती हूँ कि आज जो श्रीमान् के कुछ मित्र खाना खाने आने वाले हैं उनके लिए घर में आटा नहीं है, बस।

(कहकर शारदा तेजी से धम-धम करती हुई जाती है, बड़-बड़ाती रहती है।)

बातें ! बातें !! जब देखो बातें ! जब सुनो, बातें ! (गिलास फेंकती है) जी में आता है, जिस किसी को खाने को कह देते हैं। यह नहीं सोचते कि खाना आयेगा कहाँ से ? कोई बात है ! मुझे दर-दर भटकना पड़ता है। बाजार जाऊँ तो मैं ! अस्पताल जाऊँ तो मैं ! घर को देखूं तो मैं ! और आप हैं कि आराम से लेटे-लेटे जमीन-आसमान के कुलावे मिलाते रहते हैं ! दोस्तों के साथ वे कहकहे लगाते हैं कि आसमान फटने लगता है, पर मुझसे यह भी नहीं पूछ सकते कि तुम्हारी उँगली में क्या हुआ है ?....(ठिठकती है।)

ओह, यह क्या ? यह दूध किसने बखेरा है ? (कड़ककर) शरत्, ओ शरत् ! आखिर अपने बाप का बेटा है ! निकम्मा, उजाड़ ! क्यों रे, दूध क्यों बखेरा है ?

शरत् : (रुआँसा) हम तो आ रहे थे। गिलास में पैर लग गया।

शारदा : (चिल्लाकर) पैर लग गया ! क्यों लग गया ? देखकर नहीं चला जाता ? बड़ी नदी बह रही है न दूध की ! कल को यह भी नहीं मिलेगा। इन लच्छनों से दूध क्या, पानी की बूंद को तरसोगे ! तुमने जन्म ही ऐसे घर में लिया है। (स्वर भर्राता है।) पिछले जन्म में जरूर पाप किये होंगे। उठा गिलास !....देख क्या रहा है ? कुछ खाये-पीयेगा भी ? ले, यह दूध ले। (दूध उलटती है।) पहले ही सींक-सा है। हड्डी-हड्डी गिन लो। बड़ा होगा तो कहेगा, 'माँ-बाप हमारा पेट भरने लायक नहीं थे, तो हमें पैदा क्यों

किया था ?' मैं कहती हूँ, देख क्या रहा है ? जल्दी से पीकर गिलास मुझे दे ।

शरत् : (झिझकता है ।) अम्मा, तुम....

शारदा : मैं कहती हूँ, दूध पी ! फिर शशि के घर जाना है ।

शरत् : शशि चाची के घर ? क्यों अम्मा ?

शारदा : आटा लाने । घर में भिखारी के लिए भी मुट्ठी-भर आटा नहीं है । कोई खाने आयेगा । मैं चली जाती पर मुझे अभी बरतन माँजने हैं, दाल बीननी है (बरतन खटकते हैं ।) उससे कहना दो सेर आटा दे दे । मैं तब तक बरतन मांजती हूँ ।

शरत् : (धीरे से) अम्मा !

शारदा : हाँ ।

शरत् : तुम बरतन न माँजो ।

शारदा : मैं बरतन न माँजू ? क्यों, और कौन माँजेगा ?

शरत् : हम माँजेंगे ।

शारदा : (चकित) तू....

शरत् : हाँ ! तुम्हारे हाथ में फुन्सी निकल रही है, दुखेगी ।

शारदा : (एकदम काँपती है, फिर प्यार से हँसती है ।) जा, जा, आटा ले आ ! बरतन माँजेगा ! बाप ने निहाल कर रखा है, जो बेटा करेगा ! जा बेटा !

(शरत् जाता है । बैठक में-से आवाज आती है ।)

शैलेन्द्र : अरे भई, पानी भेजना ।

शारदा : (स्वगत) लो शुरू हो गये हुक्म ! अब पानी दो, अब पान दो ! इतना भी नहीं कि उठकर ले जायें ।

शैलेन्द्र : शरत्....शरत्....ओ शरत्....

शारदा : (कुछ जोर से) वह यहाँ नहीं है । पड़ोस में गया है ।

शैलेन्द्र : तो दो गिलास पानी भेज दो, और पान भी....

शारदा : (तिनककर) भेज दो ! भेजने को कौन नौकर बैठा है ? यह भी

नहीं कहा जाता कि दे जाओ ! एक मुसीबत है ! अब हाथ धोओ, धोती बदलो ! न जाने कौन आया है । (पानी उलटाती है) कोई हो, मैं तो ऐसे ही जाती हूं ! (जाती है ।)

शैलेन्द्र : अरे भई, शारदा····

शारदा : लीजिए !

शैलेन्द्र : लाओ, और पान भी भिजवा दो ।

शारदा : लाती हूं ।

(लौटती है कि शरत् भागा आता है ।)

शरत् : अम्मा, (हांफते हुए) चाची ने आटा नहीं दिया ।

शारदा : नहीं दिया ! क्यों ?

शरत् : कहा है कि तीसरे दिन आटा मांगने आ जाते हैं ? कहां से दें ।

शारदा : (तड़पकर) क्या कहा, 'तीसरे दिन आ जाते हैं ?' कौन मरा जाता है तीसरे दिन ! और लाती हूं तो क्या कभी रखा है ? तूने कहा नहीं ?

शरत् : (मौन रहता है ।)

शारदा : (तीव्र होकर) हाय राम, तूने कुछ नहीं कहा ! बिलकुल अपने निकम्मे बाप पर गया है । घर में जबान कैंची की तरह चलती है—बाहर निकलते ही गला बैठ जाता है । अरे, तुझसे मुंह फाड़कर नहीं कहा गया कि चाची, बता तो कौन-सा आटा रख लिया है तेरा ! ले जाते हैं, तो दूसरे दिन दे भी जाते हैं !

(शरत् फिर भी मौन ही रहता है ।)

शारदा : (तीव्र स्वर) अब बुत की तरह क्या खड़ा है ? जा, अपने बाप को पान दे आ । मैं शशि को देखती हूं । (जाते-जाते) क्या समझा है उसने ? कभी कुछ मांग लेती हूं तो उसने भिखमंगा ही समझ लिया है····

शशि : (दूर से आता स्वर) शरत् ! ओ शरत् !

(शशि का प्रवेश)

शारदा : कौन है ? ओहो; शशि है ! क्या और कुछ कहना है, जो यहाँ आयी हो ? मैं कहती हूँ, शशि, तुझे ताना मारते शर्म तो नहीं आयी । आटा नहीं देना था तो मना कर देती, पर बड़े बोल क्यों बोली ? बता तो, किस दिन तेरा आटा नहीं लौटाया और कौन-कौन-सी चीजें रह गयी हैं, बता ।

शशि : देख भाभी, इतना तड़कने-भड़कने की जरूरत नहीं है । आटे को मैंने मना नहीं किया । निकाला हुआ रखा है । मैं तो कह रही थी कि भाई साहब को हाथ, पाँव चलाने चाहिये । इस तरह····

शारदा : (तड़पकर) बस-बस, शशि रहने दे ! उन तक न जा । उन्हें तू खिला रही है क्या ? तेरा इतना साहस कि तू उन्हें निकम्मा कहे ! तेरे तो इनके पैर धोने लायक भी नहीं हैं, दुनिया पूजती हैं इन्हें । दूसरे दर-दर मारे फिरते हैं तो कोई नहीं पूछता, यहाँ घर बैठे पूजने आते हैं । कोई दिन न जाता होगा जो पाँच-सात का खाना न बनाती हूँ । बनाती हूँ तो मैं, मुसीबत है तो मेरी, तुझे क्या दर्द उठा जो लगी उनका अपमान करने ?

शशि : इसमें अपमान की क्या बात है, तू ही तो कहा करती है····

शारदा : अपमान को और क्या गोली मारती ! दो बात में आबरू मिट्टी में मिलती है । दो पैसे हो गये हैं तो लाडो का दिमाग फिर गया है ! पैसे की यही माया है । अभिमान फूलता है, आदमियत सिसकती है । यहाँ तो तन खपाना पड़ता है, तब दो टुकड़े नसीब होते हैं पर कोई बता दे कभी किसी का कुछ खाया है, किसी से भीख माँगी है । उधार तो करोड़पति तक को लेना पड़ता है ।

शशि : भाभी, तूने तो बात का बतंगड़ बना दिया । ले भेज, कहाँ है शरत् ? आटा ले आयेगा ।

शारदा : नहीं शशि, अब मैं कभी तेरी देहली पर चढ़ूं तो मुझ-सा बुरा कोई नहीं। मुझे अब तेरा आटा नहीं चाहिए। कुछ नहीं चाहिए (कण्ठ भीगता है।) तुझे अपना समझती थी, तभी तेरे पास आ जाती थी। नहीं तो और बहुत-से घर हैं। घर-गिरस्ती में लेना-देना चलता ही रहता है।

शशि : मैं कब कहती हूँ कि लेना-देना नहीं चलता ? मैं कब कहती हूँ कि तू मुझे अपना नहीं समझती ? समझती है, तभी तो इतनी बात कह दी। पर तेरी तो माया ही निराली है ! हर समय खीझी रहती है। तेरे भले के लिए करो····

शारदा : (एकदम) मेरे भले के लिए ! शशि, तू कहना चाहती है कि तूने मेरे भले के लिए इनका अपमान किया है ? तू इन्हें समझती क्या है ? दुनिया इनसे सलाह माँगती है, इनकी ओर देखती है। दिन-भर भीड़ लगी रहती है। अब भी दस लोग बैठे हैं········

[बैठक में कोलाहल उठता है—पास आता है]

शैलेन्द्र : (गम्भीर स्वर में) सो भाई, मूल बात अकिंचन बनने की है। शेष राजनीति ऊपरी है। भोजन उसे जड़ से मिलता है। जड़ में अकिंचनता है तो राजनीति मनुष्य की दासी है। वैसे आज तो वह उसकी गरदन पर सवार है।

मित्र : (गम्भीर स्वर में) यह सब शब्दों का मायाजाल है, धोखा है ! अकिंचनता का अर्थ है अपने को नष्ट करना। मैं पूछता हूँ कि क्या नष्ट हो जाने में ही कल्याण है ?

शैलेन्द्र : मेरी नीति में नष्ट होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, पर जो दूसरों को नष्ट करने का दावा करते हैं वे सबसे पहले अपना नाश करते हैं।

मित्र : आप शायद निर्माण करते हैं।

शैलेन्द्र : निस्सन्देह। लेकिन क्षण-भर के लिए मैं आपकी बात मान लेता

१०

हूँ कि अकिंचन बनने में हमारा नाश हो जाता है। मैं पूछता हूँ, इससे संसार का क्या बिगड़ता है। और बिगड़ भी जाये, कोई इस रास्ते आकर देखे तो सही। लोग तो पहले ही काल्पनिक भय के कारण जानें दिये दे रहे हैं। मेरे भाई, भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। आज की यह सारी शक्ति इसी काल्पनिक भय की नींव पर खड़ी है। (ये शब्द दूर जाते हैं। शारदा का उच्छ्वसित स्वर उठता है।)

शारदा : भय ! हाँ, सब एक-दूसरे से भय खाते हैं। इसीलिए एक-दूसरे से घृणा और द्वेष करते हैं। इसीलिए एक-दूसरे के शत्रु हैं। कितनी ठीक बात कही उन्होंने, कितनी ठीक ! इसका कोई क्या जवाब दे सकता है ? मैं कहती हूँ, शशि, इनके सामने आकर सब चुप हो जाते हैं !''''अरे शशि तो चली गयी !

शरत् : (दूर से आता स्वर) अम्मा, तुम यहाँ खड़ी हो ? उधर चूल्हे में आग जल रही है। आओ न, आओ न।

शारदा : (एकदम जाती हुई) ओह ! मैं तो भूल ही गयी थी कि मुझे रोटी पकानी है। कौन जाने, इन्हीं में कोई खाने वाला हो और वे अभी कहला भेजें। कोई भरोसा थोड़े ही है उनका (शरत् से) शरत् बेटा, मैं आटा लाती हूँ, तू''''

शरत् : आटा तो शशि चाची रख गयी।

शारदा : (काँप कर) रख गयी !

शरत् : हाँ।

शारदा : ओह, शशि भी बस''''(गहरा निःश्वास) शरत्, तू बैठक में जाकर पूछ कि खाने वाले आ गये क्या ?

शरत् : अभी जाता हूँ अम्मा !

शारदा : और देख धीरे से पूछना।

शरत् : अच्छा, अम्मा !

शारदा : (स्वगत उच्छ्वसित स्वर) कितना समझदार लड़का है। इतनी

उमर में दूसरे बच्चों को मुंह धोने तक का शऊर नहीं होता पर इसे कितना ध्यान रहता है मेरा ! मेरी उँगली की फुन्सी से कितना दुखी है ! मुझे बरतन मांजते देखकर इसने कितने प्रेम से कहा था····

[संगीत के साथ पिछला दृश्य मस्तिष्क पर उभर आता है ।]

शरत् : अम्मा !

शारदा : हाँ ।

शरत् : तुम बरतन न मांजो !

शारदा : मैं बरतन न मांजू ? क्यों, और कौन मांजेगा ?

शरत् : हम मांजेंगे ।

शारदा : (चकित) तू ?

शरत् : हाँ, तुम्हारे हाथ में फुन्सी निकल रही है, दुखेगी ।

[पिछला दृश्य मिटता है । फिर वर्तमान में लौटती है ।]

शारदा : और एक वे हैं ! माना, वे विद्वान् हैं, दुनियाँ उन्हें पूजती है । पर वे किसी का खयाल क्यों नहीं रखते ? इतनी सुन्दर बातें करते हैं, इतना सुन्दर लिखते हैं, पर वे यह क्यों नहीं सोचते कि दूसरे भी मनुष्य हैं ? कई दिन से मेरी उँगली में पीड़ा है, पर उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं कि काम कैसे होगा ? कौन करेगा ? (गहरा नि.श्वास) पिछले मास मैं तेज बुखार में तड़पती रही, पर उन्होंने दवा लाकर नहीं दी । दो मिनिट से अधिक पास नहीं बैठे । आये, हँसे और चले गये । यह तो श्रीधर था । बिचारे ने दिन देखा, न रात, पट्टी से लगकर मेरी सेवा की । इनके भरोसे तो मैं मर जाती ! मर जाती, उन्हें क्या; और किसी से शादी कर लेते ।

शरत् : (दूर से) अम्मा !

शारदा : (काँपकर) क्या है ?

शरत् : अम्मा, पिताजी कहते हैं कि खाना पाँच आदमियों के लिए बनाना ।

शारदा : (स्तम्भित) पाँच आदमियों के लिए !

शरत् : हाँ अम्मा !

शारदा : (एकदम उबलकर) कह दे जाकर कि यहाँ होटल नहीं खुला है, और न कोई सदावर्त लगा है ! क्या समझ लिया है मुझे ? कह दिया, पाँच आदमियों के लिए खाना बनाना है, जैसे घर में कामधेनु बँधी हुई है ! वाह जी वाह ! कुछ करना, न धरना । दिनभर तख्त पर पड़े हुए हुक्म चलाते रहते हैं । करना पड़े तो पता लगे ! भला कोई बात है ! पाँच आदमियों को क्या अपना सर खिलाऊँगी ? जरा बुलाकर तो ला ।

शरत् : अम्मा, वहाँ तो बहुत से आदमी बैठे हैं ।

शारदा : तू जायेगा भी, या यहीं खड़ा-खड़ा जबान चलाये जायेगा ? आखिर है तो उसी बाप का बेटा !

शरत् : (रुआँसा) अम्मा....

शारदा : न जा ! मैं कुछ नहीं करती । कुछ नहीं करूँगी । एक दिन की बात हो तो भुगती जाये, पर यह तो रोज-रोज की दाँता-किलकिल है जो यहाँ आयेगा, कुछ-न-कुछ खाकर जायेगा, पर वह खाना कहाँ से आयेगा ? इसकी चिन्ता नहीं है । (तेजी से बोलती और काम करती रहती है ।) मैं देखूँगी कि आज क्या होता है । आज फैसला न किया तो मेरा नाम शारदा नहीं । न जाने, पिछले जन्म में कौन से पाप किये थे, जो ऐसे निकम्में के पल्ले बँधी, पर....पर मैं क्या अपंग-अपाहिज हूँ ? दस काम कर सकती हूँ—पढ़ा सकती हूँ और ....तब क्या-क्या सोचा था क्या हो गया....

[किसी के आने की आहट]

श्रीधर : भाभी नमस्ते ।

शारदा : कौन ? ओहो, श्रीधर ! नमस्ते !

श्रीधर : भोजन बन रहा है । बैठक में भी बड़ी भीड़ है । जान पड़ता है कि आज फिर दावत है ।

शारदा : (उबलकर) यहाँ तो रोज दावत होती है। वही बात है कि घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने। भीड़ कब नहीं लगती? और लगेगी तो खायेगी ही। हुक्म आया है कि पाँच आदमियों के लिए खाना तैयार करो। अब तुम बताओ कि मैं कहाँ जाऊँ क्या करूँ? इन्होंने तो मेरा जीना दूभर कर दिया।

श्रीधर : हूँ, तो आज पाँच आदमी खाना खायेंगे।

शारदा : आज क्या, अभी। अभी कहला भेजा है।

श्रीधर : पहले नहीं कहा था ?

शारदा : पहले तो एक का कहा था और घर में एक के लिए भी बन्दोबस्त नहीं। हो कहाँ से! कोई हिले तब तो।

श्रीधर : (चकित-स्वर) ना बाबा! यह तो अत्याचार है। कोई बात है, किसी भली औरत को इस प्रकार सताना! भाभी सच कहता हूँ, तुम हो,नहीं तो इस घर में कोई टिक सकता है? घर में दाने नहीं, लाने की हिम्मत नहीं, दिल इतना बड़ा कि दावत देंगे शहर-भर को! खून किसी का बहे, शहीद कोई बने!

शारदा : तू ही देख ले।

श्रीधर : इसका तो कुछ प्रबन्ध करना होगा भाभी!

शारदा : प्रबन्ध कुछ हो सके तो रोना ही क्या है ?

श्रीधर : वह तो सीधी-सी बात है। मैं बताता हूँ!

शारदा : क्या ?

श्रीधर : तुम आज खाना न बनाओ। देखते हैं, क्या होना है? आखिर एक दिन इस बात का फैसला तो होना ही है।

शारदा : होना तो है।

श्रीधर : तो बस आज होने दो। सबसे अच्छा तो यह है कि तुम गायब हो जाओ।

शारदा : क्या ?

श्रीधर : मैं सच कहता हूँ कि तुम गायब हो जाओ।

शारदा : (अस्फुट स्वर) मैं गायब हो जाऊँ ? गायब····

श्रीधर : हाँ, इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है। जब तुम चली जाओगी तब उन्हें आटे-दाल का भाव मालूम होगा। पता लग जायेगा कि साहित्य क्या होता है, उसकी सृष्टि कैसे होती है।

शारदा : (जैसे खो जाती है।) क्या कह रहा है, श्रीधर ?

श्रीधर : वही जो ठीक है।

शारदा : (फुसफुसाहट) 'वही जो ठीक है' ?····मेरा गायब होना ठीक है ? (एकदम पुकार कर) शरत्, शरत् !

शरत् : (पास आता हुआ) आया अम्मा ! (आकर) क्या है अम्मा ?

शारदा : आलमारी में मेरी सन्दूकची है न ? उसके नीचे के खाने में एक रुमाल है। उसमें तीन रुपये बँधे हैं। वे ले आ।

शरत् : लाता हूँ, अम्मा ! (जाता है।)

श्रीधर : रुपयों की तुम क्यों चिन्ता करती हो ? मेरे साथ चलो।

शारदा : श्रीधर, तुम्हारी बात मैंने सुन ली है। सोचूंगी, आज फैसला करके रहूँगी, पर····

श्रीधर : पर क्या ?

शारदा : पर जो खाना खाने आये हैं, उन्हें खाना तो खिलाना ही होगा। यह उनकी और मेरी बात नहीं है, घर की बात है।

शरत् : (आकर) लो अम्मा ये रहे रुपये।

शारदा : लाओ, बेटा (मुड़ कर) श्रीधर, तुम्हें कष्ट तो होगा, भइया ! पर जरा बाजार चले जाओ। पास में ही चाट वाले की दुकान है। एक रुपये की चाट शरत् को ले देना। हलवाई की दूकान पर शायद दूध भी मिल जाये। गरम-ठण्डा, कैसा भी हो, डेढ़ सेर ले लेना। सावक के चावल परे हैं, खीर बना दूंगी, और हाँ····

श्रीधर : (चकित) भाभी !

शारदा : एक दर्जन पके केले भी लिवा देना। तुम्हीं दे जाना। तुम्हें कष्ट

तो होगा ही। उनका क्या है, दस दिन खाना न मिले। पर जो लोग आशा लगाकर बैठे हैं, वे क्या कहेंगे।

श्रीधर : (और भी चकित) पर भाभी !

शारदा : जल्दी कर भाई, देर हो जायेगी।

श्रीधर : (चौंककर) जाता हूं, अभी जाता हूं !

शारदा : अरे, बरतन तो लेता जा।

श्रीधर : (मुड़कर) लाओ, पर भाभी....(झिझकता है।)

शारदा : क्या है ?

श्रीधर : भाभी, आज तो कुछ भी हो। आगे ऐसे नहीं चलेगा। तुम्हें सोचना चाहिए।

शारदा : जरूर सोचूंगी। पर अब तू जा।

(अन्तर सूचक संगीत)

शारदा : (फुसफुसाती है।) 'आज जो कुछ भी हो आगे ऐसे नहीं चलेगा। तुम्हें सोचना चाहिए....मुझे सोचना चाहिए ? आगे ऐसे नहीं चलेगा ?....नहीं चलेगा....हाँ, नहीं चलेगा ((सहसा गिलास गिरता है।) कौन शरत् ? कहाँ जाता है, खाता क्यों नहीं ?

शरत् : अम्मा, खाया नहीं जाता।

शारदा : खाया नहीं जाता ? शरत्, तेरी तो कोई बात मेरी समझ में नहीं आती। बाप ही बहुत हैं झिकाने को ! तू भी उसी रास्ते चलने लगा है। नहीं खाया जाता ! पहले ही बहुत मिलता है, जो लिये बैठा रहता है ! कबतक तेरे लिए रुकी रहूँगी ? चल, बैठ ! खबरदार जो कुछ छोड़ा।

शरत् : (रोता हुआ, क्रोध से) अम्मा, तुमने अपने लिए तो कुछ रखा ही नहीं। सब हमें ही दे दिया है।

शारदा : मैं कहती हूँ, तू खाता है या बहस करता है ? बड़ा आया चिन्ता करने वाला ! सब हमें दे दिया ! सूरत तो देखे कोई—सींकसलाई

हो रहा है ! नहीं तो तेरी उमर के बच्चे को कोई देखे तो देखता रह जाये । जल्दी कर ! मैं इतने में अन्दर ठीक कर लूं । जितना खाया जाये, खा ले । बाकी शाम के लिए रख दे ।

(शारदा जाती है : शैलेन्द्र आता है ।)

शैलेन्द्र : शरत् !

शरत् : जी, पिताजी !

शैलेन्द्र : खाना खा रहा है ? अच्छा लगा न ?

शरत् : बहुत अच्छा है पिताजी, पर खाया नहीं जाता । अम्मा ने सब कुछ हमें ही दे दिया ।

शैलेन्द्र : सब कुछ तुम्हें ही दे दिया ?

शरत् : हाँ, पिताजी ! अपने लिए कुछ नहीं रखा ।

शैलेन्द्र : कुछ नहीं ?

शरत् : नहीं ।

शैलेन्द्र : क्यों ?

शरत् : पता नहीं ।

शैलेन्द्र : खैर, कुछ बात होगी । पेट में दर्द होगा । तुम खाओ । न खाया जाये तो रख दो । हाँ, तुम्हारी अम्मा है कहाँ ?

शरत् : अन्दर काम कर रही है ।

शैलेन्द्र : (पुकारता हुआ जाता है ।) शारदा !

शारदा : (मौन)

शैलेन्द्र : (पास जाकर) शारदा !

शारदा : (उखड़े स्वर में) हाँ ।

शैलेन्द्र : सुनो, शारदा !

शारदा : (कर्कश स्वर) क्या कहना है ? कहो !

शैलेन्द्र : तुमने कुछ नहीं खाया ?

शारदा : तुम्हें क्या मतलब ?

शैलेन्द्र : मतलब तो कुछ नहीं है।

शारदा : तो जाइए, यहाँ पूछने क्यों आये हैं ?

शैलेन्द्र : वैसे ही चला आया।

शारदा : (उबलकर) वैसे ही चला आया ! 'वैसे ही' क्या होता है ? कोई देखे तो समझे, जैसे बड़ा ध्यान रखने वाले हैं। मैं कहती हूँ, कान खोलकर सुन लो। मैं अब इन दिखावटी बातों में आने वाली नहीं हूँ। मैंने तय कर लिया है....

शैलेन्द्र : क्या तय कर लिया है ? मैं भी तो सुनूँ।

शारदा : तुम्हें सुनने की क्या जरूरत है ? तुम अपना काम करो। मुझे जो भी करना होगा, कर लूंगी। आज तक तुमने क्या सुना है जो अब सुनोगे ?

शैलेन्द्र : शारदा तुम्हें क्या हो गया है ? पहले तो ऐसी नहीं थी। बात-बात पर तेज हो जाती हो और भई, वे लोग आ गये तो क्या करूँ ? तुम्हीं बताओ, मना कर देता ? सब अपने-अपने भाग्य का खाते हैं। दाने-दाने पर मोहर है। और सच कहता हूँ शारदा, आज तो खाना इतना स्वादिष्ट बना था कि वे सब तुम्हारी तारीफ करते नहीं अघाते थे।

शारदा : मुझे नहीं चाहिए किसी की तारीफ ! उसे आप गठरी में बाँधकर अपने सिर पर रख लीजिए ! ओढ़िए, बिछाइए, पर मुझे तंग मत कीजिए ! मैं जा रही हूँ।

शैलेन्द्र : जाने को मैं नहीं रोक सकता, पर एक बात निश्चित है कि तुम्हारे बिना मुझे तारीफ मिलने वाली नहीं है।

शारदा : (क्रोध) मैंने कह दिया न कि मेरा इन बातों से कोई मतलब नहीं। क्यों मुझे जलाने आ गये हो ? मैं अब नहीं रहूँगी, नहीं रहूँगी ! मेरा-तुम्हारा निबाह नहीं हो सकेगा।

शैलेन्द्र : निबाह तो हो रहा है, पर जा कहाँ रही हो ?

शारदा : कहीं भी जाऊँ।

शैलेन्द्र : पर मैं जानूं तो सही ।

शारदा : फिर वे ही दिखावटी बातें ! तुम चले जाओ, नहीं वो मैं अभी कूद पड़ूंगी ।

शैलेन्द्र : (कुछ क्रुद्ध) कूद पड़ोगी तो कूद पड़ो । तुम तो हमेशा ही ऐसी धमकियाँ देती रहती हो ।

शारदा : क्या कहा ? मैं धमकियाँ देती हूं ? अच्छी बात है ! देख लेना, इस क्षण के बाद इस घर का एक बूंद पानी भी पिऊँ तो शारदा न कहना !

शैलेन्द्र : तुम्हारे जो जी में आये, करो । मैं तो चला ।

(जाता है ।)

शारदा : तुम क्या चले, चल तो मैं रही हूं ! आज मैं इस घर में किसी शर्त पर नहीं रह सकती । चाहे मुझे सड़क पर पड़ना पड़े, पर यहाँ नहीं रहूँगी । मुझे न जाने क्या समझ लिया गया है ! नौकरानी भी अच्छी होती है....

शरत् : (दूर से) अम्मा, हम नीचे जा रहे हैं ।

शारदा : (न सुनती हुई) श्रीधर ठीक कहता था । आगे ऐसे नहीं चलेगा । मुझे सोचना चाहिए ।

शरत् : (पास आकर) जायें अम्मा ?

शारदा : (क्रोध से) कहाँ जाता है ?

शरत् : नीचे अम्मा, खेलने ।

शारदा : नीचे ! जब देखो, तब नीचे ! तूने अलग जान खा ली आखिर....

शरत् : अम्मा, न जायें....

शारदा : (सँभल कर) जा बाबा ! मैं कब मना करती हूं ? जा, जल्दी आ जाना ।

शरत् : अच्छा अम्मा ! जल्दी आऊँगा ।

(शरत् भाग जाता है । क्षणिक शान्ति)

शारदा : (गहरी साँस) क्या से क्या हो गया ! क्या सोचा था ! उन दिनों मैं इनकी कला पर मुग्ध थी। इनकी लेखनी ने मेरे दिल को पकड़ लिया था। दिन-रात सपने देखती थी। दोनों मिलकर कला की सेवा करेंगे। दोनों मिलकर संसार का भ्रमण करेंगे। पर""पर वे स्वप्न तो स्वप्न ही रह गये। इन्होंने मेरी और मेरी भावनाओं की ओर देखा तक नहीं। मेरे अरमानों की चिन्ता तक नहीं की।

(संगीत के साथ फ्लैश-बैक)

शशि : ओहो, भाभी खूब सजी बैठी हो ! भई, सचमुच सुन्दर लगती हो।

शारदा : सच ?

शशि : घर में दर्पण तो होगा रानी, देख लो न।

शारदा : दर्पण में तो अपनी आँखें देखती हैं, शशि ! उनकी राय का क्या मूल्य ?

शशि : तो भाई साहब से पूछा होता !

शारदा : उनकी आँखें तो बिक गयीं।

शशि : बिक गयीं ! क्या मतलब ?

शारदा : मतलब भी समझाना पड़ेगा शशि ? कब से राह देख रही हूँ। पाँच बजे आने को कह गये थे, और अब साढ़े सात बज रहे हैं, हर बार यही होता है। हर बार वे कहीं रुक जाते हैं। आकर कहते हैं, 'अरे भूल गया ! क्या करूँ, मित्र मिल गये थे, घर रहते हैं तो""

(संगीत उभरता है।)

शैलेन्द्र : शारदा ! ओह, बस अब किताब खत्म होने वाली है। अभी चलता हूँ।

शारदा : अब""अब तो आठ बज गये""

शैलेन्द्र : आठ ! अब तो कहीं नहीं जा सकेंगे। अच्छा, फिर किसी दिन

चलेंगे। साड़ी कहीं उड़ी थोड़े जाती है। अब तो तुम चाय बना लो। शायद एक-दो मित्र आ जायें। कुछ खाने को भी चाहिए।

शारदा : घर में न चाय है, और न····

शैलेन्द्र : अरे, बाजार में तो है, ले आओ।

शारदा : पर····

शैलेन्द्र : शारदा, मैं ले आता, पर लेख पूरा होने वाला है और मैं उठा तो बस विचारों का क्रम टूट जायेगा। (मुस्कुराकर) वैसे तुम कहो तो छोड़ दूं।

शारदा : (एकदम) नहीं, नहीं ! आप लिखिये। मैं जाती हूँ।

(संगीत समाप्त। वर्तमान काल)

शारदा : (उच्छ्वास) और इस तरह धीरे-धीरे मेरी इच्छाएँ बुझ गयीं, मैं एक भार ढोने वाली मुर्दा मशीन की तरह बन गयी, पर कभी वे दिन भी थे जब मैं सदा उन्हें आँखों में बसाये रखती थी। काश कि मैं उन क्षणों को फिर पा सकूं ! काश कि मैं उनकी तसवीर को फिर ललचायी आँखों से देख सकूं।

(मादक संगीत उभरता है। फ्लैश बैक)

सखी : शारदा, ओ शारदा ! क्या कर रही है, लाडो ?····ओहो, पढ़ रही हैं। देखूं तो, क्या है।

शारदा : ऊ हूँ रहने दो।

सखी : रहने कैसे दूं ? पहले मुझे दिखा क्या है ? ओहो, यह तो तसवीर है! ऐं री, किसकी तसवीर है ?

शारदा : तेरे सिर की।

सखी : मेरे सिर को लेकर तू क्या करेगी ? वह तो बिक गया। तू बता तू अपना सिर कहाँ बेचने का इरादा रखती है ?

शारदा : भाड़ में !

सखी : (हँसकर) भाड़ में ! हाय रे, इतना तेज बुखार चढ़ा है ? मेरी

लाड़ली को ! देखूं नब्ज । ओहो, तापमान ११० से ऊपर जा रहा है, पर''''पर कोई डर नहीं, यह प्रेम का ताप है । जितना बढ़ता है, सौन्दर्य उतना ही निखरता है, कविता उतनी ही प्रखर होती है, उन्माद उतना ही मादक होता है। चित्रों में रुचि बढ़ती है, कहानियों के दो अक्षर पढ़कर उन्हें छाती से लगाकर, नानारूप स्वप्नों में विचरने को मन करता है और''''

शारदा : मैं कहती हूँ, मैं तुझे मार दूंगी''''

सखी : और किसी को मारने को जी करता है ?

शारदा : चली जा मेरे सामने से, नहीं तो''''

सखी : और एकान्त प्रिय होता है''''

शारदा : उफ्''''उफ्''''

सखी : और जब ताप की अग्नि असह्य हो उठती है तो बेचारी पिंजरे के पंछी की तरह 'उफ्-उफ्' पुकारती है ।

[हँस पड़ती है ।]

शारदा : (चिढ़कर) ही''''ही''''ही''''लाड़ो का विवाह हो गया है तो किसी को कुछ समझती ही नहीं । हमेशा नशे में चूर रहती है ।

सखी : नशा ? हाँ, शारदा वह नशा ही है । मैं उसी नशे में चूर हूँ और''''

शारदा : (मौन)

सखी : पूछती नहीं, 'और' क्या ?

शारदा : नशेबाजों से बातें करना हमें अच्छा नहीं लगता ।

सखी : पर नशेबाजों को बातें करना ही अच्छा लगता है । यही नहीं जिनको अभी वह नशा नहीं चढ़ा है, उनको भी वह नशा चढ़ाने को वे आतुर रहते हैं । सो शारदा, इधर देख ।

शारदा : क्या ?

सखी : यह चित्र''''देख गठीला बदन, गुलाबी वर्ण, विशाल वक्षस्थल, आजानु

बाहु, मदिर नयन, इन्हीं नयनों से बहती मदिरा पीकर....

शारदा : परे हट, क्या अंटसंट बक रही है!

सखी : पहली प्रतिक्रिया इसी प्रकार होती है, शारदा! पर तू सुन तो ले। इसका नाम है श्रीधर। दिल्ली के प्रसिद्ध सुधारक घराने का सुशिक्षित युवक है। एम० ए० पास है....अरे यह क्या, तू सुनती क्यों नहीं?

शारदा : सब सुन चुकी हूँ।

सखी : तो?

शारदा : (चुप है।)

सखी : फिर वही मौन? तू उधर क्या देख रही है? पढ़ फिर लेना....ओ, यह क्या? देखूँ....

शारदा : न....न....

सखी : न....न....की रानी। देख तो लेने दे! (पढ़ती है।) 'रात की रानी', लेखक, शैलेन्द्र। और यह चित्र किसका है? ओह, श्री शैलेन्द्र का है?....तो यह बात है! सिर नीचा क्यों कर लिया? शारदा, शारदा मुझसे भी परदा!

शारदा : नहीं।

सखी : तो क्या?

शारदा : (मौन)

सखी : समझो, तो यह बात है! तूने देखा है....

शारदा : (मौन)

सखी : अब तोड़ दे मौन को! मुझे गलत न समझ। तूने देखा है?

शारदा : हाँ।

सखी : कहाँ?

शारदा : साहित्य-परिषद् की गोष्ठियों में।

सखी : गोष्ठियों में? यानी एक से अधिक बार, यानी अनेक बार, कभी बात भी की है?

शारदा : हाँ।

सखी : जानती है, वह भिखारी है, अकेला है ?

शारदा : होंगे। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि दुनिया उनको घेरे रहती है, उनकी पूजा करती है।

सखी : समझो, पुजारिन का दिल बिक चुका है !

शारदा : (मौन)

सखी : पर, शारदा ! तूने बुरी जगह सौदा किया। बुआ को मनाना टेढ़ी-खीर है, लेकिन मनाना होगा।

शारदा : (भावुकता से) सखी, मेरी सखी !

सखी : पर अभी समय है। तू भी सोच-समझ ले। कहानियाँ लिखने वाले स्वप्नदर्शी होते हैं, और स्वप्नदर्शियों से प्रेम हो सकता है, पर निबाह होना कठिन है।

(संगीत उठता है। शारदा वर्तमान में लौटती है।)

शारदा : (गहरा निःश्वास) उसने कितना ठीक कहा था। कितना ठीक। स्वप्नदर्शियों से प्रेम हो सकता है, पर निबाह होना कठिन है.... निबाह होना कठिन है....कठिन है....हाँ, कठिन है ! बहुत कठिन है !....असम्भव है। स्वप्नदर्शी को पत्नी की नहीं, पुजारिन की जरूरत है। उस पुजारिन की, जो माँ का हृदय रखती है, जो अपने को मिटाना चाहती है, जिसके अरमान पूरे हो चुके हैं, जिसकी लालसाएँ तृप्त हो चुकी हैं। पर मैं....मैं....तो अभी प्यासी हूँ। वे भी तो अपना स्वार्थ पूरा करना जानते हैं। फिर वे दूसरों के स्वार्थ की चिन्ता क्यों नहीं करते ? क्यों वे एक बार भी मेरे लिए कुछ लेकर नहीं आये ? क्यों उन्होंने नहीं सोचा कि मैं भी कुछ चाहती हूँ....

(शरत् पुकारता हुआ आता है।)

शरत् : अम्मा, अम्मा तुम कहाँ हो ?

शारदा : (सँभलकर) यह रही, यह रही, शरत् ! क्या बात है ?

शरत् : (पास आकर) अम्मा, अम्मा ! तुम कपड़े क्यों बांध रही हो ? कहीं जा रही हो क्या ?

शारदा : कहीं नहीं, मैं कहीं नहीं जा रही। कपड़े ठीक कर रही थी, बेटा ! तू क्या करता फिर रहा है ?

शरत् : कुछ नहीं, अम्मा ! नीचे खेल रहे थे ! लाओ, मैं भी कपड़े ठीक करता हूं। तुम्हारी उँगली दुख रही है। तुम अकेले कैसे करोगी ? क्यों अम्मा, डॉक्टर उँगली काटेगा ?

शारदा : नहीं रे ! वह तो फुन्सी चीरकर उसकी गन्दगी निकालेगा।

शरत् : फिर ?

शारदा : फिर मेरी उँगली ठीक हो जायेगी।

शरत् : अच्छा। (क्षणिक मौन) अम्मा !

शारदा : हाँ।

शरत् : वे अन्दर क्यों नहीं आती ?

शारदा : वे....वे कौन ?

शरत् : वे ही जो पिताजी के पास बैठी हैं ?

शारदा : पिताजी के पास !....कौन बैठी है ?

शरत् : वे ही, जो उलटी साड़ी पहनती हैं। सफेद जूते वाली, सिर पर कुछ नहीं ओढ़तीं। कई दिन से रोज ही आती हैं।

शारदा : ओहो, वे छोटी-सी, चुलबुली-सी; चश्मा लगाती हैं ?

शरत् : हाँ, मुझे बड़ा प्यार करती हैं। पिताजी से बहुत बातें करती हैं। पर तुमसे क्यों नहीं करतीं ?

शारदा : मुझसे ?....ओह ! हाँ, वे कहानी लिखना सीखती हैं, बेटा ! तेरे पिताजी कहानी लिखना जानते हैं, मैं नहीं जानती। इसलिए मेरे पास नहीं आतीं।

शरत् : अच्छा, यह बात है ! पर अम्मा, तुमसे तो वे कभी भी बात नहीं करतीं। अन्दर आतीं ही नहीं।

शारदा : नहीं आती तो न सही। हाँ, तू जरा मनोरमा चाची के पास तो चला जा। उसका अटेरन माँग ला। जो सूत पड़ा है, अटेरकर तेरे लिए कुरतों की खादी बुनवानी है। जा, जल्दी जा।

शरत् : अभी जाता हूँ। (जाता है।)

शारदा : (कटुता से) तो शीलाजी फिर आयी हैं। जान पड़ता है, बात आगे बढ़ गयी है। मेरी ओर उन्हें दृष्टि डालने की फुरसत नहीं। घर का काम करना सूली पर चढ़ने-जैसा लगता है। पर उससे घुट-घुटकर घंटों बातें होती हैं। रोमान्स लड़ाया जाता है। रंगीन सपने देखे जाते हैं। हूँ····तभी आजकल उखड़े-उखड़े-से रहते हैं। पर मैं भी आसानी से छोड़ने वाली नहीं हूँ। ऐसा बदला लूंगी कि याद रखेंगे। दुनिया-भर में बदनाम न किया तो मुझे शारदा न कहना। दूसरे का घर उजाड़ना हँसी-खेल नहीं है। और न किसी विवाहिता को आसानी से धोखा दिया जा सकता है। मैं आज ही जाऊँगी, आज ही। वह तो शरत् के कारण रुकी थी, नहीं तो कभी की चली जाती। शरत् मेरा है, मेरे साथ रहेगा। मैं उसे यहाँ नहीं छोड़ सकती। नहीं छोड़ सकती। (क्षणिक मौन, जिसमें सामान उठाने का स्वर) न जाने क्या बातें कर रहे हैं। चलूं, दो बातें मैं भी कर लूं। और जान लूं कि आखिर वे क्या सोचते हैं, कहाँ जाना चाहते हैं ? फिर पूछूंगी····(फुसफुसाहट के स्वर पास आते हैं।) हूँ, तो घुट-घुटकर बातें हो रही हैं ! सुनूं तो····

[चलती रहती है। शैलेन्द्र और शीला के स्वर पास आते हैं।]

शैलेन्द्र : तो बात यहाँ तक पहुँच गयी है ?

शीला : जी। ऐसी हालत में, मैं आपसे पूछती हूँ, क्या मुझे अपने पति के पास रहना चाहिए ?

शैलेन्द्र : आपको उनके पास रहना चाहिए, या नहीं रहना चाहिए, यह

तो आपके निश्चय करने की बात है। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

शीला : पर आप सलाह तो दे सकते हैं ?

शैलेन्द्र : मुझे किसी को सलाह देने का अधिकार नहीं है।

शीला : मार्ग सुझाने का भी नहीं ?

शैलेन्द्र : नहीं शीलाजी ! इस बारे में मुझे कोई अधिकार नहीं है। यह तो केवल आपके निश्चय करने की बात है। इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा, मुझ पर नहीं।

शीला : (एकदम) पर····शैलेन !

शैलेन्द्र : जी !

शीला : (सँभलकर) कुछ नहीं, कुछ नहीं, (सन्नाटा) यदि मुझे ही निश्चय करना है तो मैंने निश्चय कर लिया है।

शैलेन्द्र : कर लिया, तो ठीक है।

शीला : पर क्या आप उसे जानना नहीं चाहेंगे ?

शैलेन्द्र : आवश्यकता तो नहीं है, पर चाहो तो सुन सकता हूँ।

शीला : (झिझकती हुई) मैं अब उनके साथ नहीं रहूँगी।

शैलेन्द्र : हूँ····

शीला : मैं कल ही वहाँ से चली आऊँगी।

शैलेन्द्र : कहाँ ?

शीला : आपके पास।

शैलेन्द्र : मेरे पास ?

शीला : जी हाँ।

शैलेन्द्र : मेरे पास से आपका मतलब मेरे घर से है न ?

शीला : मैं घर-वर कुछ नहीं जानती। मैं आपको जानती हूँ।

शैलेन्द्र : पर मैं तो कुछ नहीं हूँ, जो कुछ है, घर है।

शीला : कुछ भी हो।

शैलेन्द्र : कुछ भी कैसे ? उसमें अन्तर है। मैं कुछ नहीं हूँ, जो कुछ है, घर

है। और घर से मतलब है शारदा। सो मेरे घर आओगी, तो उससे पूछना पड़ेगा। मैं तो उससे कह ही सकता हूँ कि जब तक तुम ठहरो, तुम्हारा प्रबन्ध कर दें। करना काम शारदा का है। मैं शारदा के बिना कुछ नहीं हूँ, शीलाजी!

शीला : क्या, क्या मतलब है? आप शारदा के बिना कुछ नहीं हैं।

शैलेन्द्र : हाँ, वह तो स्पष्ट है।

शीला : पर, पर, जहाँ तक मुझे मालूम है, आपका गृहस्थ-जीवन सुखी नहीं है; आप लोग....

शैलेन्द्र : (शीघ्रता से) ठहरिए! यह आपकी राय है, मेरी नहीं। मैं जो कुछ हूँ, उसी के बल पर हूँ! वस्तुतः मैं हूँ ही नहीं, वही है।

शीला : (काँपकर) लेकिन आपमें और शारदा में प्रेम नहीं है; आप लोग....

शैलेन्द्र : (शान्त स्वर में) अपनों से प्रेम का प्रदर्शन नहीं किया जाता, शीलाजी! अच्छा है, हम लोग शारदा की बातें न करें।

शीला : ओह!

[शारदा का उच्छ्वसित होकर पागल के समान भागना। क्षणभर बाद वह रुदन-भरे स्वर में बोलती है।]

शारदा : ओह, ओह....यह क्या हुआ! उन्होंने क्या कहा! मैं शारदा के बिना कुछ नहीं हूँ। जो कुछ है शारदा है। जो कुछ है शारदा है। (धीरे-धीरे रो पड़ती है) ओह, ओह.... । ओह!....(शरद् भाग कर आता है।)

शरद् : अम्मा........अम्मा! ले, अटेरन ले आया। (पास आकर) और अम्मा, डाकिया आया है। और वे तो चली गयीं। नीचे जा रही थीं! मुझसे बोली तक नहीं। और अम्मा, वे रो रही थीं। और अम्मा....तू भी रो रही है!

शारदा : (एकदम हँसकर) नहीं, मैं नहीं रो रही। वह तो आँख में कुछ पड़ गया था।

शैलेन्द्र : (पुकारता है) शारदा ! शारदा ! (पास आकर) लो यह मनिआर्डर आया है। एक चेक भी है। दस्तखत कर दिये हैं। किसी को देकर पैसे ले आना।

शारदा : जी अच्छा !

शैलेन्द्र : (धीरे-से) गुस्सा उतर गया दीखता है ! अरे भाई, हम निकम्मों पर गुस्सा करके क्यों खून जलाया करती हो ! हम क्या ठीक होंगे ! निभा लो।

[हँसता है।]

शारदा : हटो, क्या अटसंट बोलते हो। बैठक में जाकर अपना काम करो।

[हँस पड़ती है। दोनों हँस पड़ते हैं।]

परिशिष्ट १

- भुवनेश्वर—हिंदी नाटकों के इतिहास की फैन्टसी है, पुराकथा हैं। अपने जीवनकाल में ही अपनी तेजस्वी रचनाशीलता के कारण वे साहित्य में लुप्त हो गये थे। १९५७ में जब मैं एम० ए० का विद्यार्थी था भुवनेश्वर काशी आये थे और हम लोगों के लिए विचित्र देवदूत जान पड़ते थे। उसी साल फटे हाल माँगते-खाते यहीं बनारस की सड़कों पर मरखप गये।
- उन्हीं दिनों रोटी और शराब की जरूरत पूरी करने के लिए उन्होंने खामोशी नामक नाटक लिखा था। यह नाटक भी उनकी रचनाओं के इतिहास में पूरी तरह गुम हो गया। पहली बार इस पुस्तक में इस नाटक का पुनर्मुद्रण हो रहा है।
- आश्चर्य के साथ आप पायेंगे कि सारी तंगी और विक्षिप्तता के बावजूद 'खामोशी' तक भुवनेश्वर का क्रमशः विकास हुआ है और अब भी वे हिंदी के पहले और आखिरी सर्वश्रेष्ठ एकांकीकार हैं।
- 'ऊसर' से 'खामोशी' तक भुवनेश्वर की रचनाशक्ति का क्रमिक विकास जानने के लिए यह नाटक इन्तहा जरूरी है, साथ ही 'कारवाँ' के नाटकों से इस नाटक का फर्क समझकर उनकी आरंभिक और आखिरी रचना का साहित्यिक अन्तराल भी समझा जा सकता है।

खामोशी

बाजार में एक चित्र बहुत दिनों तक प्रचलित रहा। चित्र दो बराबर भागों में बँटा है। आधे हिस्से में एक व्यापारी बैठा मलाल कर रहा है और चेहरा, खास कर मुंह, रो रहा है। सामने एक लोहे की तिजोरी है, जो खाली है और उसमें चूहे लोट रहे हैं। चित्र के नीचे मलाल करते हुए व्यापारी के भाग्य का फैसला एक वाक्य में लिखा है—'इसने उधार बेचा।' चित्र के दूसरे भाग में दलील को पूरा करने के लिए मोटे-ताजे, हँसते मगन रूप दूसरे व्यापारी का चित्र है। जिसमें सामने की तिजोरी रुपये की थैलियों से भरी है और कुछ लिपटे हुए कागजात है, जो शायद करेंसी नोट हैं या यथार्थवाद का दुर्गम संयोग से उधार बट्टे के कागजात हैं। इस व्यापारी ने हमेशा नकद बेचा है। नाटकीय उपक्रम से चित्र बोलने लगे हैं।

गरीब और उधार बेचने वाला व्यापारी—मैं बहुत दिनों से यहाँ हूँ, बहुत दिनों से अपने भाग्य पर मैं अकेला कुढ़ रहा हूँ, लेकिन जैसी घटना आज घटी, वैसी कभी नहीं हुई। मालूम हुआ मैं यहाँ अकेला नहीं हूँ, मुझसे बिलकुल सटा हुआ एक दूसरा आदमी है।

धनवान व्यापारी जिसने नकद बेचा—मैं भी एकाध मर्तबा तुम्हारा ध्यान आकर्षित कर चुका हूँ।

गरीब व्यापारी—यह किसकी आवाज है? उस आदमी से मैं कैसे सम्पर्क कर सकता हूँ?

धनवान व्यापारी—तुम जरा अपनी जगह से हटो तो देखो।

गरीब व्यापारी—यह कठिन है।

धनी व्यापारी—यह कठिन नहीं है।

गरीब व्यापारी—तब तुम स्वयं यह क्यों नहीं करते?

धनी व्यापारी—मैं खुद यह क्यों नहीं करता ? क्या निर्धनता ने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया है, तुम समझते हो कि जिस तरह तुम उधार बेच कर मिट गये हो उसी तरह में भी मिट जाऊँ। मैं कहता हूँ तुम्हारा अपनी जगह से हटना हर तरह से अर्थसिद्ध है। उधार बेचकर तुमने अपना सब कुछ गवाँ दिया। अब तुम अपनी तिजोरी बेच दो और उससे जो कुछ मिले उसे लगाकर कोई छोटा-मोटा काम करो फिर कभी उधार न बेचो।

गरीब व्यापारी—यह कैसे हो सकता है ?

धनी व्यापारी—तुम मुझे देखो। मैं कभी उधार नहीं बेचता। मेरा व्यापार धन से भरा है।

गरीब व्यापारी—मैं यह कुछ नहीं देखता और सब मेरी समझ में आ गया। मुझे समझ में आ रहा है कि मेरा काम संसार में उधार बेचना है, तुम्हारा काम नकद बेचना।

धनी व्यापारी—तुम्हारा मतलब है कि तिजोरी बेचकर जो व्यापार करोगे उसमें भी उधार बेचकर मिट जाओगे। मैं तुम्हारे दुर्भाग्य पर तरस खाता हूँ।

गरीब व्यापारी—तुमको कैसे मालूम कि मैं तिजोरी बेच दूँगा। (चिल्ला कर) जरा सुनो, यह व्यापारी कठिन कुकर्म कर रहा है। यह कहता है कि मैं अपनी तिजोरी बेच दूँ और बाजार का सारा व्यापार नकद बेचकर लौटा दूँ। मैं कहता हूँ यह धनवान व्यापारी गद्दार है।

(कुछ लोग जैसे पहले से इसके लिए तैयार हों, धनवान व्यापारी पर हमला कर देते हैं। अच्छा खासा गोलमाल हो जाता है। चीखने-चिल्लाने की, तिजोरी और दरवाजों के बंद हो जाने की आवाजें आती हैं। तब शांति हो जाती है।)

पहला आदमी—हमें सतर्क रहना चाहिए।

दूसरा आदमी—हमें बहुत होशियारी रखनी चाहिए।

तीसरा आदमी—हम कहते हैं कि यह प्रवृत्ति घातक है। नक़द बेचने वालों को कोई अधिकार नहीं है कि उधार बेचने वालों को अपनी जगह से हटायें और उसकी तिजोरी खरीद लें।

चौथा आदमी—मैं कहता हूँ यह बात ऊटपटांग है। हमें मालूम है कि नकद बेचने वाला अच्छा है, उधार बेचना बुरा है।

पांचवां आदमी—मैं यहां से जाना चाहता हूँ।

दूसरा आदमी—तुम चले क्यों नहीं जाते ?

पांचवां आदमी—मैं एक बात का इन्तजार कर रहा हूँ कि नकद बेचने की तारीफ करने वाला अपनी बात वापस ले। हम लोग अगर उधार न खरीदें तो हमारा पेट चलना कठिन हो जाय।

दूसरा आदमी—इसके जवाब में मैं कहता हूँ कि अगर व्यापारी नकद सौदा न दें तो बाजार का सारा क्रम चौपट हो जाय।

तीसरा आदमी—फिर भी हम उधार बेचने की तारीफ नहीं कर सकते।

दूसरा आदमी—हालांकि बिना उधार खरीदे हमारा पेट पालना कठिन है।

चौथा आदमी—हो सकता है, तब भी उधार बेचना या खरीदना बुरा और नकद बेचना या खरीदना अच्छा है।

पांचवां आदमी—यह किसने किया ?

दूसरा आदमी—उधार बेचने वाले व्यापारी ने। वह मिट गया। नकद बेचने वाला व्यापारी लाचार है कि उधार बेचने वाले को मिटा दे।

गरीब व्यापारी—मैं इस जगह एक बात कहता हूँ। मैं कहता हूँ कि एक तरफ से नहीं, हर तरफ से मेरा काम उधार बेचना हो गया है। मैं कई जगह, कई तरह से कई व्यापार कर चुका हूँ।

हर जगह....

चौथा आदमी—तुम उधार बेचकर मिट गये। तुम कह रहे हो, तुम कह गये कि उधार बेचना बुरा है।

उधार व्यापारी—हो सकता है, बल्कि बुरा है, लेकिन यह मेरा काम है।

कई आवाजें—हमें इस हठधर्मी को अभी मिटा देना चाहिए। हम कहते हैं (धनवान व्यापारी से)हम कहते हैं कि यह कहकर कि उधार खरीदना या बेचना

बुरा है, लेकिन फिर भी इस व्यापारी आदमी का काम उधार बेचना है। इस गरीब व्यापारी ने अपना फैसला खुद कर लिया। तुम उठो और इसको मिटा दो।

धनी व्यापारी—तो यह चित्र मिट जायेगा। तुम क्या कहते हो, तुम क्या समझते हो कि एक काम सिर्फ बुरा होने से त्याज्य हो जाता है। बल्कि मैं इसके बाद कुछ नहीं कहूँगा। (गरीब व्यापारी से) हमें खामोश रहना चाहिए। तुमने बोलकर अपना सर पीट लिया।

गरीब व्यापारी—मैं खामोश हो जाऊँगा, बल्कि मैं खामोश हो गया (आवाज बदलकर) लेकिन मैं कुछ कर नहीं सकता, मैं तो एक तरह से ठप हो गया—तुमको मेरी बात के जवाब में बोलना चाहता था।

धनी व्यापारी—देखो तुम्हें इतना जल्दी कोई निर्णय नहीं करना चाहिए। तुमको एक बात देखनी चाहिए कि चारों तरफ एक खामोशी छायी है। यह खामोशी हम लोगों पर कठिन शासन कर रही है।

चौथा आदमी—लेकिन यह चित्र बराबर कहता है कि उधार बेचना या खरीदना बुरा है। नकद बेचना और खरीदना अच्छा है। हम यह बात मानते हैं, हम इस खामोशी का मतलब समझते हैं।

धनी व्यापारी—तुम कुछ नहीं समझते—तुम बाजार का, समाज का, चित्र का एकत्व नष्ट करना चाहते हो।

चौथा आदमी—हम ऐसा कोई भी काम नहीं करते और न करना चाहते हैं। हम सब साधारण लोग हैं, और दुनिया में जो अच्छा समझा जाता है वह अच्छा है और जो बुरा समझा जाता है वह बुरा है।

धनी व्यापारी—हम यह कुछ नहीं जानते, तुमने मुझ पर अभी हमला किया और अब तुम्हारी जिद है कि मैं उधार बेचनेवाले को दोषी ठहराऊँ।

चौथा आदमी—तुम्हारे खुद यह चित्र बिगाड़ देने से चित्र साफ कहता है कि उधार बेचना बुरा है।

गरीब व्यापारी—लेकिन खामोश, तुम यह क्यों नहीं देखते हो कि उधार बेचने की बुराई और नकद बेचने की अच्छाई मिलकर चित्र को इकाई बनाती हैं।

पाँचवाँ आदमी—तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि जिस तरह चित्र है उस तरह आधी दुनियाँ खरीद और उधार बेचकर तबाह हो जाय और आधी नकद बेचे और सरसब्ज हो (सहसा फिर गोलमाल हो जाता है। गरीब और धनवान व्यापारी दोनों एक साथ झपटकर बोलने वाले आदमी को दबोच लेते हैं और दूसरों को तितर-बितर करना चाहते हैं।)

धनी व्यापारी, गरीब व्यापारी—हम तुमको यहाँ तरह-तरह की बातें नहीं करने देंगे। हम तुमको कोई बात नहीं करने देंगे। हम चाहते हैं कि तुम सिर्फ यह चित्र देखो, और खामोश रहो।

चौथा आदमी—(दबुचा हुआ) हम आज इसे चाहे मान लें, लेकिन....

धनी व्यापारी—तुम इस खामोशी का शासन नहीं स्वीकार करते। हम कहते हैं कि हम अपनी सारी ताकत से तुम्हें नष्ट कर देंगे—बस खामोश।

गरीब व्यापारी—(उँगली उठाकर) खामोशी और कुछ नहीं। हम अपनी सारी ताकत लगाकर तुम्हें नष्ट कर देंगे।

●

[सम्पादक शुकदेव सिंह की पुस्तक 'भुवनेश्वर की रचनाएँ' से उद्धृत।]

परिशिष्ट २

नाटकों के अध्ययन के लिये विचार-सूत्र

१

औरंगजेब की आखिरी रात : डॉ० रामकुमार वर्मा

● 'औरंगजेब की आखिरी रात' प्रायः 'भाण'-शैली का नाटक है। पूरे नाटक में न क्रिया-व्यापार है, न टकराता हुआ कथा-तत्त्व, घात-प्रतिघात अर्थात् नाटकीय स्थितियाँ। मरणासन्न औरंगजेब का एकालाप है जो लगातार सत्ताइस-अट्ठाइस पृष्ठों तक हलकी-फुलकी यतियों के साथ चलता रहता है। साँस का रोगी, नवासी वर्ष का बूढ़ा, मरते समय भी यदि सत्ताइस पृष्ठ तक लगातार वक्तव्य दे सकता है तो स्वाभाविक है कि नाटक की विश्वसनीयता खतरे में पड़ जाय। किसी मार्मिक प्रसंग या इंद्रियवेद्य विषय को नाटकीय आकार में वितरित कर देने मात्र से नाटक नहीं बन जाता। नाटक में दृश्य और द्रष्टा का संबंध, इस संबंध से उत्पन्न तर्क और तर्कोचित वास्तविकता भी जरूरी है। यदि मंच पर एक पात्र लगातार बिस्तर पर लेटे हुए, खाँसते हुए घंटों तक बोलता रहे तो परिस्थिति के करुण होने पर भी प्रेक्षक भाग जायगा। गतिहीन, खाँसी से भरे हुए एकालाप को सुनते हुए मरते हुए आदमी के साथ मर जाने से बेहतर है—रंगशाला के बाहर जाकर ठंढी साँस लेना।

● 'औरंगजेब की आखिरी रात' नाटक में न नाटकीय पात्रों में आपस में संवाद होता है, न प्रेक्ष्य-प्रेक्षक में संबंध ही होता है। सिनेमा की टेकनीक में यदि स्मृति-प्रतीकों, स्वप्न-बिंबों, फैन्टसीज के माध्यम से नाटक को देखा जाय तो शायद संप्रेषण हो भी जाय। औरंगजेब जैसे धार्मिक, सदाचारी, ईश्वरभक्त किंतु विवादास्पद व्यक्ति को अपराध-स्वीकृति की स्थिति में डालकर नाटकीय विश्वसनीयता नहीं प्राप्त की जा सकती। दरअसल औरंगजेब की आखिरी रात,

नाटक की विषय-वस्तु कविता की है। वस्तु (कॉंटेण्ट) के गलत होने के कारण ही स्वरूप (फॉर्म) भी गलत हो गया है।

● तकनीकी गलतियों के बावजूद इस नाटक का केंद्रीय कथ्य कभी-कभी मन को छूता है। यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि मन को छूने वाले हिस्से टुकड़े में प्रभाव डालते हैं, नाटकीय ढाँचे के भीतर से नहीं प्रभावित करते। इसीलिए 'औरंगजेब की आखिरी रात' एक कवि-प्रणीत एकालाप बन कर रह गया है, नाटक की कोई त्वरा, कोई विशेषता, कोई शक्ति, कोई अर्थवत्ता इस नाटक में नहीं है।

२

ऊसर : भुवनेश्वर प्रसाद

● 'कारवाँ' की भूमिका में भुवनेश्वर ने लिखा है–'जिस भाँति जीवन असार और निष्फल है उसी प्रकार कला भी। जीवन एक लजीली मुस्कान है और कला एक शुष्क और कठोर हास्य।' यह बात भुवनेश्वर ने प्रायः ४० वर्ष पहले कही थी–ऐसे जमाने में जब साहित्य की संवेदना शब्द रूप से छायावादी थी और साहित्य का मतलब करुणा, विरहानुभूति वगैरह हुआ करता था। भुवनेश्वर ने जिस गैररूमानी और गहरी वेसरोकारी से अपनी बातें कहनी शुरू की थीं वह उस जमाने के आदमी के लिए आज के जमाने की बात थी। और जब भुवनेश्वर आज के जमाने तक पहुँचने के पहले ही मुफलिसी में मरखप गये तो यह कल के जमाने की बात हो गयी। इस संदर्भ में आकस्मिक नहीं है कि 'श्यामा एक वैवाहिक विडंबना', 'पतिता', 'एक साम्यहीन साम्यवादी', 'प्रतिभा का विवाह', 'रहस्य और रोमांच', 'लाटरी', 'मृत्यु', 'सवा आठ बजे', 'आदम-खोर', 'इंस्पेक्टर जनरल', 'रोशनी और आग' जैसे नाटकों को पढ़कर लोग चौंक गये थे। चौंक इसलिये भी गये कि भुवनेश्वर इनकार किए जाने की पीड़ा को दूसरों की मूर्खता के समानान्तर रखकर झेलते थे, किसी तरह के बचाव की कोशिश नहीं करते थे। उन्होंने निराला तक के संबंध में कहा था—'निराला हिंदी के इस युग की कंट्रोवर्सी है, समालोचना को प्रशंसा का समअर्थी समझने की भूल उसने भी की और समालोचकों के अभाव में स्वयं अपनी प्रशंसा शुरू कर

दी।' जाहिर है कि भुवनेश्वर उपेक्षा का मुकाबला करने के बजाय उपेक्षा करने वालों के लिए रास्ता छोड़ देते थे। यही वजह है कि भुवनेश्वर हिंदी-साहित्य के इतिहास में प्रायः गुम हो गये हैं और उनकी रचनाएँ भी प्रायः नजरअंदाज कर दी गई हैं। 'कारवाँ' के नाटकों के अलावा भुवनेश्वर ने 'सिकन्दर', 'अकबर', 'चंगेज खाँ' जैसे ऐतिहासिक नाटक भी लिखे जो न केवल 'प्रसाद' को अतीतदृक् कला के क्षेत्र में पीछे छोड़ते हैं बल्कि आज भी ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण नमूने हैं।

● भुवनेश्वर की रचनाशीलता की पहचान 'कारवाँ' के नाटक और ऐतिहासिक नाटक ही नहीं हैं। ये रचनाएँ उनकी प्रतिभा के दो पड़ाव मात्र हैं। दरअसल उनकी प्रतिभा के पूरे विस्तार तक पहुँचने के लिए 'कारवाँ' के नाटकों से होते हुए 'ताँबे के कीड़े', 'ऊसर' और अनन्तः 'खामोशी' तक की रचना-क्रिया के विस्तार और विकास को समझना जरूरी है। 'खामोशी' उनकी जिन्दगी की शायद आखिरी रचना है और 'ऊसर' उनके विकासशील दिनों का मध्याह्न। वे अपने पहले नाटक से आखिरी नाटक तक लगभग ३० वर्षों का समय लेते हैं जिनमें उनके पागलपन, बीमारी और भिक्षावृत्ति के कई अंतराल हैं। लेकिन आश्चर्य की बात है कि रचनाकार की दृष्टि से भुवनेश्वर के भीतर निरन्तर एक प्रौढ़तर कला बनने की प्रक्रिया में रही है। वे न कहीं शुरू होते हैं और न कहीं खत्म होते हैं, लगातार निर्माणाधीन दिखाई देते हैं। इसीलिए भिक्षावृत्ति करते हुए उनका मर जाना इन्सानियत के इतिहास की एक बहुत मामूली चोट हो सकती है लेकिन रचना के इतिहास की सबसे बड़ी चोट या इबरत की चीज है।

● 'ऊसर' में मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन और हास्यास्पद स्तर के बिखराव को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है। आपसी रिश्ते इस हद तक खत्म हो चुके हैं कि आदमी आदमी के सम्बन्ध की तुलना में आदमी है और कुत्ते का रिश्ता ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। नाटक के आरम्भ में लड़का कुत्ते के साथ है, गृहस्वामी के साथ नहीं। गृहस्वामी दुहरे चेहरे वाला आदमी जिसकी पत्नी की अपनी ग्रन्थियाँ हैं। अश्लील और काफी हद तक भीतर-

भीतर सड़ती हुई ग्रंथियाँ इस पूरे माहौल में हैं जिसके लड़का, गृहस्वामी, ट्यूटर, मोटीरमणी, गृहस्वामिनी, लड़कियाँ जैसे कई और कई तरह के हिस्से हैं। ये सब एक साथ नहीं हैं, प्रायः अकेले और परस्पर अजनबी हैं लेकिन एक ही माहौल की उपज हैं या इनसे एक माहौल बनता है जिसका मतलब है कि आनेवाली जेनरेशन चाहे बिल्ली की हो या साँपों की पर इससे अच्छी होगी।

● बिल्ली या साँपों से भी गई बीती इस जेनरेशन या वर्ग का गृहस्वामी अपने स्वामित्व की कठिनाई से इस कदर बँटा और बटा हुआ है कि उसकी बातों में कोई तारतम्य नहीं है। उसके चेहरे दर चेहरे हैं। वह भीड़-भड़क्के से बहुत भड़कता है लेकिन अपने पास भीड़ इकट्ठी किये रहता है। उसकी आमदनी और उजले खर्च में इतना बड़ा अन्तराल है कि अपने बच्चे के ट्यूटर को तनखा देने में भी मजबूर है लेकिन उसका कहना है कि उसने ट्यूटर की इमदाद की गरज से ट्यूशन का इन्तजाम किया था। ट्यूटर और गृहस्वामी के बीच वह लड़का कहीं नहीं है जिसके लिए इन्तजाम किया गया था। ये दो तरह की मजबूरियाँ हैं जो गृहस्वामी और ट्यूटर को, लड़के से अलहदा रखकर इनके वर्गीय चरित्र का खोखलापन तैयार करती हैं। ट्यूटर पढ़ा-लिखा बेकार आदमी है लेकिन शिक्षा के कारण उसकी दिमागी बनावट मध्यवर्गीय है। इसी लिए गृहस्वामी के घर में नौकरी करते हुए भी वह उस गृह के सब लोगों से अपने को बहुत ऊँचा समझता है और थोड़े पैसे के लिए की जाने वाली अध्यापकी के मामले में उसका ख्याल है कि वह 'इण्टलेक्चुअल एक्सपेरीमेंट' कर रहा है। इस मध्यवर्ग की औरतों का यह चरित्र है कि उनके दिमाग में सेक्स, बिजली, अंधेरा शाह नजफ रोड जैसी परस्पर विरोधी टकराहटें हैं जो इस वर्ग के स्त्रीपक्ष के अपूर्ण वासनाचक्र को संकेतित करती हैं।

● नाटक में भुवनेश्वर ने अत्यन्त सघन और संश्लिष्ट ताने-बाने में मध्यम-वर्गीय चरित्र को पूरी सजगता से उभारने का प्रयत्न किया है लेकिन नाटक के घनत्व की जाँच चरित्रों के पैमाने पर नहीं की जा सकती। दरअसल इस नाटक के पात्र अत्यन्त छोटी-छोटी इकाइयाँ हैं, चरित्र तो वर्ग का है—मध्यम वर्ग का। शायद यह पहला नाटक है जिसमें पहली बार चरित्रों की महत्ता को

अस्वीकार करते हुए नाटक के सम्पूर्ण अर्थ की ओर नाटक के प्रत्येक पात्र और प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक संकेत को एक साथ अभिमुख कर लिया गया है। 'ऊसर' की सार्थकता इसी संदर्भ में और इसी स्तर पर है।

●

३

पर्दे के पीछे : उदयशंकर भट्ट

● 'पर्दे के पीछे' नाटक में उदयशंकर भट्ट ने पूंजीपतियों के वर्गीय चरित्र को उद्घाटित किया है। इस वर्ग के हर आदमी के दो चेहरे होते हैं। धर्म, त्याग, दया और दयनीयता का एक चेहरा होता है, जो हाथ में माला लिये हुए राम-राम जपता हुआ पक्षियों के लिए अस्पताल खोलता है, अपने कर्म-चारियों पर दया करके दान या इनाम में एक कुर्त्ता दे देता है, चंदाखोरों को चंदा देता है और अफसरों की जी-हुजूरी में लगा हुआ शिष्टता के सारे संभव आचरण करता है। जिसकी दया और शालीनता के बारे मे अखबारों में खबरें छपती हैं, लेकिन इस वर्गीय आदमी का एक दूसरा चेहरा भी है जो अपने मुनीमों से बहियाँ बदलवा कर नम्बर दो के पैसे इकट्ठा करता है, अपने अस्पताल के डॉक्टर से पशु-पक्षियों का कुशल-क्षेम न पूछकर इनकमटैक्स अफसर या इसी तरह के लोगों से संबंध बनाने का काम लेता है। प्रतिष्ठा के लिए नाम छपवाने के लिए अपने ही अस्पताल के नौकर के सामने कुत्तागीरी की हद तक गिर जाता है। अपने किरायेदार पर हैवान की तरह जुर्म करता है और फिर किराएदार को काम का आदमी देखकर सारे तेवर बदल देता है। इस दोहरे चेहरे का इस्तेमाल यह पूरा वर्ग करता है चाहे सेठ छीतरमल हों या चाँदीराम या कोई भी हो। नाटककार ने पूंजीपतियों के वर्गचरित्र को सामने लाने के लिए ही इस नाटक को रचनात्मक आकार दिया होगा।

● 'पर्दे के पीछे' में नाटककार उदयशंकर भट्ट ने पूंजीपतियों के वर्ग-चरित्र को पहचाना तो जरूर है लेकिन लेखक के पास न राजनीतिक दृष्टि है, न वर्गगत पक्षधरता। इसीलिए वह न सेठ के कर्मचारियों में उठते हुए आवेश को फैलाता ही है, न नाटक में सही विपक्ष की रचना ही कर पाता है। दीनू, मुनीम, डॉक्टर और किराएदार की सहायता से जलता हुआ आवेश या विपक्ष तैयार किया जा सकता था। लेकिन यह तभी संभव है जब वह शोषित वर्ग से जुड़ा हुआ महसूस करता हो। 'पर्दे के पीछे' केवल पूंजीपतियों का मजाक उड़ाकर छोड़ देता है और मजाक या विदूषकीकरण पूंजीवादी नकाब को और मजबूत बनाता है। दुश्मन को बेवकूफ और हास्यास्पद साबित करने से बेहतर है उसे बदमाश और जालिम साबित करना।

● शायद अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण ही नाटक अपनी सारी संभावनाओं को, नाटकीय अर्थ की तल्खी और गंभीरता को प्रहसन के भीतर ही दब जाने देता है।

●

४

विषकन्या : गोविन्दबल्लभ पन्त

● 'विषकन्या' ऐतिहासिक नाटक है, इस अर्थ में नहीं कि उसमें किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा को आधार बनाया गया है, बल्कि एक ऐतिहासिक स्थिति या रीति को ही इसमें विषय बना लिया गया है। मध्यकाल में शत्रु को वशीभूत करने के लिए अत्यंत रूपवती लड़कियों को बचपन से ही विष दे देकर विषकन्या के रूप में विकसित किया जाता था। लड़कियों को कला, संगीत, साहित्य, राजनीति, कूटनीति और राष्ट्रप्रेम की एक साथ शिक्षा दी जाती थी जिससे वे शत्रु को अपनी प्रत्येक भंगी और रूप से छल सकें। शत्रु संपर्क में आते ही

सहवास मात्र से सुखपूर्वक मर जाय। 'विषकन्या' की 'अपराजिता' एक ऐसी ही निपुण लड़की है।

● नाटक में विजेता 'चन्द्रविजय' को पराजित करने के लिए अपराजिता ने अद्भुत कुशलता से 'चन्द्रविजय' का हृदय जीता है। अपने रूप और शील से थोड़ी ही देर में वह 'चन्द्रविजय' का सबसे बड़ा प्रलोभन, सबसे बड़ा स्वप्न बन जाती है। 'चन्द्रविजय' उसके मोह में इतनी दूर तक उलझ जाता है कि अपनी सारी राजकीय जिम्मेदारियाँ भूल जाता है। 'अपराजिता' चेहरे पर बिना किसी शिकन के संदेशवाही कपोत को उड़ा देती है और शत्रु-सेना आ जाती है। यह चमत्कार है कि 'चन्द्रविजय' अपने सम्मोहन और कर्तव्य में से कर्तव्य को ही चुन लेता है और एक मध्यकालीन नायक की तरह 'अपराजिता' की हत्या कर देता है।

● नाटक में महत्त्वपूर्ण बात नाटक की भाषा-संरचना से सम्बन्धित है। साधारणतः ऐतिहासिक नाटककार तत्सम ऐतिहासिक शब्दों, वेश-भूषा और बोलने-चालने की पद्धतियों की सहायता से ऐतिहासिक वातावरण की रचना करते हैं। 'विषकन्या' के नाटककार ने चलती हुई भाषा का ही उपयोग किया है। घटनाओं और पात्रों के सहसम्बन्ध से यह नाटक धीरे-धीरे इतिहास में अतिक्रमित होता है। नाटक की पूरी की पूरी भाषा-संरचना बाह्य स्तर पर वर्तमानकालिक होते हुए आन्तरिक स्तर पर अतीतकालिक है। शायद नाटककार को पता है कि भाषा शब्दों के बाह्य संघटन से नहीं बल्कि अर्थ से सम्प्रेषित होती है।

● नाटक जिस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देता है वह 'अपराजिता' से ही सम्बन्धित है। इस तरह की लड़कियाँ चाहे राज-काज को जितनी कुशलता से पूरा कर लें उनका सौन्दर्य, उनकी कला क्या उनके जीवन की सार्थकता से भी कभी जुड़ सकती है? स्त्री-जीवन की यह करुणा नाटक के बाहर पड़कर भी नाटक को बहुत दूर तक फैला देती है। 'विषकन्या' नाटक का अभिप्राय घटना की इति या राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के बाद भी है। दरअसल 'अपराजिता' के जीवन का विषाद ही इस नाटक का असली नाटक है।

५

बन्दी : जगदीशचन्द्र माथुर

● 'बन्दी' बदलते हुए गाँव के ढाँचे और झूठे राजनीतिक जागरण के परिणामों का नाटक है। शहर के आदमी के दिमाग में गाँव अब भी स्वप्न-लोक हैं। अब भी उन्हें लगता है कि गाँवों में सादगी, ईमानदारी, भोलापन, परसेवा और दया-दाक्षिण्य के फूल ही खिल रहे हैं। अब भी गाँव पिकनिक मनाने की जगह है। जहाँ, दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली, लहराते ताल और गाँव की भोली-भाली छोरियाँ रहती हैं, जहाँ जाकर ग्रामीण जहालत को दूर करने के नाम पर रोमांस किया जा सकता है, जहाँ थके हुए शहरी तनावों से मुक्ति पायी जा सकती है। हाईकोर्ट के जज और गाँव के भूतपूर्व जमींदार रायसाहब और उनकी लड़की हेमलता इसी भाव से गाँव का मजा लेने के लिए शहर से आ जाते हैं। इन लोगों के पीछे-पीछे रायसाहब की कलाकार बेटी हेमलता का प्रेमी बीरेन भी गाँवों में प्रगति लाने के इरादे से (?) पहुँच जाता है लेकिन यह सारा सिलसिला गाँव की वास्तविकता से टकराकर एक मोह-भंग—एक वापसी में बदल जाता है।

● आजादी के बाद गाँवों में एक अजीब तरह की हिंसक आवारा उदासीन स्वतन्त्रता घुस गई है। दरिद्रता के बरकरार रहने के बावजूद दयनीयता खत्म हो गई है। शहर के आदमी की तुलना में कहीं बहुत ज्यादा जागरूक और भोंड़ी सत्ता-लोलुपता गाँव के आदमी का सुख बन गई है। 'बन्दी' में बालेश्वर और करमचन्द इसी भोंड़ी सत्तालोलुपता को बहुत दूर तक तीखी सच्चाई के साथ प्रमाणित करते हैं। गाँव के ये जागरूक (?) आदमी दिमागी तौर पर सामन्ती और लालची हैं। लालच ने उनके जीवन के हर तरह के भलेपन को निगल लिया है, इस हद तक कि चौधरी साहब जैसे अंग्रेजीयत के अवशेष व्यक्ति का विदूषकीकरण और मनुष्यत्व भी उनके लिए निर्लज्ज हिंसा की वस्तु है। इस हिंसा और मक्कारी में बदलने के लिए कोई ऐसी चीज नहीं बच गई है जिसे हेमलता और बीरेन बदलें।

● बड़ी जातियों के इन प्रतीकों और अर्धशिक्षितों की दुनिया से अलग गाँवों

की एक और दुनिया है जिसे चेतू जैसे मेहनतकश मजदूर बनाते हैं। इस दुनिया में मेहनत और उसके नतीजे में एक सीधा विश्वास है कोई लालच या उच्चवर्गीय भ्रष्टता नहीं है। यहाँ गरीब और मेहनती आदमियत रहती है जो अच्छे कपड़ों, पदों और हर तरह के परोपजीवी लालचों से नावाकिफ है। लोचन इसी दुनिया में घुसकर मैले-कुचैले कपड़ों और सख्त मेहनत से एक विश्वास का माहौल तैयार कर रहा है। दरअसल गाँव का असली चेहरा यही है और जरूरत इस बात की है कि गाँवों को उनकी वास्तविकता के भीतर से विकसित किया जाय, और गाँवों को घुसपैठ करने वाले शहरी, सामन्ती सफेदपोश दोगलेपन से बचाया जाय।

● इसीलिए 'बन्दी' आलोचना और रचना के दुहरे तनाव का सन्देश-वाहक नाटक है।

●

६
और वह जा न सकी : विष्णु प्रभाकर

● 'और वह जा न सकी' पुराने ढाँचे की घटनाबहुल आकस्मिकता से बुना हुआ नाटक है। इस नाटक में 'शैलेन्द्र' नामक एक सनातन साहित्यकार है जिसकी प्रतिभा से लोग मुग्ध होते हैं, मित्र गाहे-बगाहे आते रहते हैं, जिसे लड़कियाँ प्यार करती हैं, जिसके घर में स्थायी मुफलिसी और स्थायी आतिथ्य का विरोधाभास चलता रहता है। यहाँ टकराहटें हैं लेकिन कुछ टूटता नहीं, सब चलता रहता है लगातार-लगातार।

● प्रसिद्ध लेखक शैलेन्द्र की कला से मुग्ध होकर भावुक शारदा विवाह कर लेती है। घर में आने पर उसे लगता है कि शैलेन्द्र की अतिथियों से भरी दुनिया है जहाँ आय के अनुपात में व्यय ज्यादा है। शारदा घर जोड़ने-जुटाने के क्रम में चिड़चिड़ी हो जाती है। शैलेन्द्र के सम्मान को बरकरार रखने के

लिए इस घर उस घर निर्लज्जतापूर्वक मांगती रहती है· लेकिन अपनी ईमानदारी के कारण किसी के आगे झुकती नहीं! स्वाभिमान और पति दोनों को बचाते रहने की कोशिश से उसका लड़ाकू चरित्र स्थायी हो जाता है। इसी माहौल में शीला नामक एक दूसरी महिला शैलेन्द्र पर न्योछावर होने चली आती है। शैलेन्द्र शारदा के लिए शीला को इन्कार कर देता है। बस सारी त्रासदी कामदी में बदल जाती है।

● नाटक का पूरा तंत्र संवादों से गढ़ा गया है। इस नाटक में बोलने-सुनने के अलावा क्रियाव्यापार का कोई दूसरा नाटकीय स्तर नहीं खुलता। इसीलिए विष्णु प्रभाकर की ही तरह 'और वह न जा सकी' भी सीधा-सादा नाटक है।

●

'कर्मनाशा की हार' कहानी का नाट्य रूपान्तर प्रसिद्ध रंगकर्मी श्री अवधबिहारीलाल 'सोना बाबू' ने किया है। यह रूपान्तर रेडियो से कई बार प्रसारित हुआ और लोकप्रिय भी हुआ। सोना बाबू ने कहानी में निहित नाट्यतत्व को बारीकी से पहचाना और योग्यतापूर्वक रूपान्तरित किया। एक कालातीत रचना का 'नाट्य स्वाद' सोना बाबू के कारण ही सम्भव हुआ। संपादक मूल रचनाकार डा० शिवप्रसाद सिंह के साथ ही सोना बाबू का भी समान रूप से ऋणी है।

कर्मनाशा की हार

(लेखक की सुप्रसिद्ध कहानी का रेडियो रूपांतर)

डॉ० शिवप्रसाद सिंह

(नदी में बाढ़ आई हुई है। दूर से उसके गरजने का स्वर सुनाई पड़ रहा है। समय सन्ध्या का है। दूर से कुत्तों के भौंकने का स्वर सुनाई पड़ रहा है। वायलिन का मन्द-मन्द स्वर सारे वातावरण में फैला हुआ है। दो आदमियों के चलने से जूतों का स्वर सुनाई पड़ रहा है। एक जगह आकर जूतों का स्वर रुक जाता है)

मनोज : एक बड़ा काम समाप्त हुआ। हर दूसरे-तीसरे वर्ष जो प्रलयंकारी दृश्य यह कर्मनाशा प्रस्तुत कर देती थी गाँव वालों के लिए, उससे उन्हें जानो मुक्ति मिली।

दीपक : यह बाँध····

मनोज : यह बाँध नहीं, गाँव वालों के लिए एक वरदान है। एक नये जीवन के लिए सन्देश।

दीपक : नये जीवन के लिए सन्देश ?

मनोज : हाँ, आत्मविश्वास का प्रतीक। और सबसे प्रसन्नता की बात तो यह है कि यह कार्य तुम्हारे ही हाथों से सम्पन्न हुआ है। इसे अभी तुम नहीं समझोगे और जब समझोगे तो तुम्हारी आँखों में भी प्रसन्नता के आँसू तैर उठेंगे।

दीपक : फिर इतना विलम्ब क्यों कर रहे हैं आप ? मन में एक विचित्र जिज्ञासा जगा दी है आपने ?

मनोज : कहते हैं, काले साँप का काटा आदमी बच सकता है। हलाहल जहर पीने वाले की मौत रुक सकती है, किन्तु जिस पौधे को एक बार कर्मनाशा का पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता। कर्मनाशा के बारे में किनारे के लोगों में एक और भी विश्वास

प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मनुष्य की बलि लिये लौटती नहीं थी पर थोड़ी ऊँचाई पर बसे इस गाँव, नई डीहवालों को, इसका कभी कोई खौफ नहीं था, इसीलिए वे बाढ़ के दिनों में, गेरु की तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियाँ मनाते। दो-चार दिन की यह बाढ़ उनके लिए एक तबदीली बनकर आती। वे खुशी से झूम उठते। मुखियाजी के द्वार पर लोग इकट्ठे हो जाते और देखते-देखते उनकी ढोलकें ठनकने लगतीं। बड़े-बूढ़े सभी के होठों से गीत फूट पड़ते....

(दूर से हरहराते हुए पानी की आवाज को ओवर लैप करता हुआ ढोलक का स्वर सुनाई पड़ने लगता है....एक भीड़ का स्वर.... और फिर गीत धीरे-धीरे तीव्र हो उठता है)।

ई बाढ़ी नदिया जिया ले के माने,

(धीरे-धीरे फेड आउट और ओवर लैप करता हुआ मनोज का स्वर)

मनोज : बाढ़ उनके किसी आदमी का जिया नहीं लेती थी। किन्तु एक साल अचानक जब नदी का पानी समुद्र के ज्वार की तरह उमड़ता हुआ, नई डीह से आ टकराया तो वही ढोलकें जो ठनकती थीं, उस पानी में बह चलीं। गीत की कड़ियाँ जो गाँव वाले गाते नहीं अघाते थे, मुरझा कर ओठों पर पपड़ियों की तरह छा गयीं।

(बादलों की गड़गड़ाहट और बिजलियों का शोर, पानी के बहाव का तेज स्वर) भादों का महीना, बादलों की छाँव में सोया हुआ गाँव यकायक चोट खाये साँप की तरह उठ खड़ा हुआ। लोग थर-थर काँपने लगे। भोर की किरण के साथ देखा कि सारा सीवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था....

(फिर बादलों की गड़गड़ाहट और बिजलियों का शोर) उसी में मिला हुआ भीड़ का स्वर....सभी भयभीत....कहीं से उसी में मुखियाजी 'मुखियाजी' के पुकार की मिली-जुली आवाज सुनाई

पड़ती है। सब जैसे एक बैक-ग्राउण्ड में हैं''''बहुत धीरे-धीरे स्वर उमड़ कर ऊपर आता है।)

जगेसर पाण्डे : भाई लोगों, घबड़ाने से काम नहीं चलेगा, जब विपद आई है तो करेजा मजबूत करना ही होगा। कहो इसुर भगत! गलत है?

इसुर भगत : (हकलाते हुए) नाहीं पाण्डे, बात सोलहो आने सही है। काशीनाथ की सरन। भाई लोगों, मुखियाजी ठीक कह रहे हैं। अपने-अपने करेजा को पोढ़ करके सभी लोगों को ई अनहोनी तो झेलनी ही पड़ेगी''''इसके लिए उपाय करना ही होगा, अउर कोई उपाय नहीं है।

(भीड़ में से एक आवाज आती है''''सोखा को बुलाया जाय मुखियाजी')

इसुर भगत : दीनापुर में सोखा बोलाया गया था भाई लोगों।

जगेसर पाण्डे : सो भगत, सब को बताय दो कि सोखा ने क्या कहा?

इसुर भगत : काशीनाथ की सरन। दोहाई भाई लोगों, दीनापुर में आज कढ़ाह चढ़े जाय रहा है।

(सारी भीड़ कह उठती है—कढ़ाह?''''शोरगुल''''फिर एक आवाज आती है''''सोखा ने का कहा भगत?'''')

इसुर भगत : काशीनाथ की सरन, सोखा ने कहा—एतना पानी गिरेगा, एतना पानी गिरेगा कि तीन घड़ा भर जायेंगें, आदमी और मवेशी की छय होगी, चारों ओर हाहाकार मचि जावेगी। परलय होगी, परलय। सुनती हो धनेसरा चाची?

धनेसरा : (पोपले मुंह से) सब सुनित है भगत, परलय न होगी तो का अमृत बरसेगा? बरक्कत होवेगा? हे भगवान्, जौन गाँव में ऐसा पाप होयेगा, वह गाँव बहेगा नहीं जगेसर पाण्डे? ऐसे मुखियागिरी कइसे चलेगी?

जगेसर पाण्डे : दोहाई भगवान् की, समझाय के कहो धनेसरा चाची? तनिक साफ-साफ कहो। सारा गाँव पानी में डूब गया है, बुझौली मति बुझाओ।

(भीड़ का शोर''''साफ-साफ कहो चाची''''साफ-साफ कहो'''')

घनेसरा : तो सुनो भाई लोग, काशीनाथ की सरन भगत। मैं तो सबसे पूछूं कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे बैठी है? राम रे राम, कुतिया ने कहो पाप किया और पूरे गाँव के सिर बीते। जाय के ओकरे माँ से पूछो मुखिया? कैसी सतवन्ती बनी फिरती है?

(भीड़ का स्वर—'खुलासा कहो रे चाची')

घनेसरा : हम भाई लोग, ओकरे घर आग लेवे गये तो घर में घुसने तक नहीं दिया। भाई लोग, मैं तो तबे छनकी कि हो न हो दाल में कुछ काला है। अरे, आग लगे ऐसी कोख में, तीन दिन की बिटिया और पेट में घनघोर दाढ़ी।

(एक तीव्र संगीत का स्वर उठता है)

इसुर भगत : क रे चाची, साफ-साफ न कहै के लिए तूने कसम खायी है क्या?

घनेसरा : अब हमसे मत कहवाओ भगत, कि का हुआ? समझत काहे नाहीं हो कि फुलमतिया राँड़ मेमना ले के बैठी है। बेवा लड़की बेटवा बिया कर, सुहागिन बनी है मुखिया?

(संगीत का स्वर एकाएक रुक जाता है। भीड़ एकदम सन्न रह जाती है। केवल पानी के बहाव का तीव्र स्वर सुनाई पड़ रहा है और धीरे-धीरे मोपता हुआ वायलिन का रोता हुआ स्वर फिर उठता है—भीड़ का स्वर भी जैसे फिर जागरूक हो उठता है।)

जगेसर पाण्डे : गाँव के भाई लोग—शान्त रहें, जो जहाँ है वहीं रहे—घनेसरा चाची, ई कब हुआ?

घनेसरा : ई कौनो आज की बात है पाण्डे? तीन दिन से सौरी में बैठी है। डाइन पाप का छाती से चिपकाये हैं। यह भी नहीं भया कि गर्दन मरोड़ कर गड्ढे-गुच्ची में डाल दे। अब भाई लोगों आउर कुछ न पूछो—हमें जाय दो—कहतो पाप लागत है और सुनतो पाप लागत है''''राम राम''''

(वायलिन एकाएक चीख उठती है''''वातावरण फिर धीरे-धीरे

शान्त होता है....और अस्फुट स्वर भैरो पाण्डे का आता है....पहले बैसाखी के सहारे चलने का स्वर....फिर रुक जाता है।)

भैरो पाण्डे : (अपने से ही कह रहे हैं) उफ्? कितना भयानक? लगता है इस बार यह कर्मनाशा सारे गाँव को निगल जायेगी।....मेरी यह बखरी, मेरे बाप-दादा की निशानी, उनके इकबाल की एकमात्र धरोहर?....उनके रहते तो कभी ऐसी बाढ़ नहीं आई थी।

(हँस पड़ता है)

उनके रहते कोई किसी को सता भी तो नहीं पाता था।....ऐसा था, उनका प्रताप और पराक्रम?....और उन्हीं की दी हुई यह बखरी (वायलिन का स्वर तीव्र होकर फिर मन्द हो जाता है)

जगेसर : कौन? भैरो पाण्डे? क्या देख रहे हो पाण्डे?

भैरो : यह बाढ़....

जगेसर : (हँस पड़ता है) सारा गाँव डूबा हुआ है। लोगों की आँखों में भय समा गया है और उसमें से झाँकता हुआ एक पाप....

भैरो : (चौंककर पाप?)

जगेसर : कहा कि सारा गाँव पाप में डूबा हुआ है फिर परलय न होगी तो क्या होगी?

भैरो : कैसा पाप मुखिया? कैसा परलय? और कैसी बरक्कत?

जगेसर : फुलपतिया रांड ने बच्चा जना है? और....(जैसे कोई शीशे की चीज टूट कर झन्न करके टूट जाय, भैरो चौंक गये।)

भैरो : और?

जगेसर : और कुछ नहीं........क्या समय आ गया पांडे? लगता है सब कुछ चला जाएगा, कुछ भी नहीं बचेगा....।

(चला जाता है....)

(भैरो चल पड़ता है अपनी बैसाखी के सहारे—किवाड़ का सांकल खोलता है और धप्प से चारपाई पर बैठ जाता है, चारपाई चरमरा उठती है।

दो ही पुस्त में सब चला गया............मुट्ठी में बंद जुगनू हाथ से बाहर निकल गया और भैरो? तू देखता ही रह गया............

सच ही तो है, मैं कुछ भी न कर सका। अगर चाहता तो गर्दन मरोड़ सकता था उसकी, पर कसूर तो इस पापी अनजाने हृदय का था''''आज से १८ साल पहले माँ-बाप एक नन्हा-सा लड़का मेरे हाथों में सौंप चले गये। मैं इससे इंकार नहीं कर सकता। मैं अपने उस २ बरस के छोटे भाई को कंधे से चिपकाए असहाय खड़ा देखता रह गया था। धन के नाम पर मिला कर्ज, काम-धाम के लिए दुधमुंहे भाई की देख रेख और रहने के लिए यह जर्जर बखरी। अब यह भी नहीं बचेगी''''तो फिर मैं ही बचकर क्या करूँगा ? जगेसर कह गया न ? सब जाएगा''''कुछ भी न बचेगा''''

(धीरे-धीरे''''‘सब जाएगा''''कुछ भी न बचेगा’''''चारों ओर से प्रतिध्वनित होने लगता है''''भैरो पहले धीरे-धीरे महसूस करता है कि उसका दम घुट रहा है फिर हँसने का स्वर''''हँसता जाता है''''हँसता जाता है जो करुण हो उठता है।)

सब गया''''कर्मनाशा की यह बाढ़ इस जर्जर बखरी को ही नहीं, हमारे पितामह की प्रतिष्ठा को भी हड़पने आई है लेकिन जिस प्रतिष्ठा को मैं कंधे पर लिये घूमता हूँ उसे धरती पर नहीं गिरने दूँगा''''रहा कुलदीप ? मैं पहले से ही जानता था कि वह खानदान का नाश करने आया है।''''''''(घबड़ा कर) तो क्या कुछ भी न बचेगा ? सब क्या केवल एक सपना मात्र था ? मैं, यह शरीर, यह बखरी, कुलदीप''''सब, सब सपना मात्र''''

[प्रतिध्वनि—(जगेसर का स्वर) भैरो, फुलमतिया रांड ने बच्चा जना है''''और''''(अट्टहास)।]

चुप रहो ? जनने दो''''भैरो से क्या मतलब ? सारा संसार जानता है कुलदीप मेरे बाप-दादा के कुल की निशानी है। सब एक स्वर से कहते हैं कि उसके मुंह पर भैरो के माँ की छाप है। उस पर भैरो के दादा की बौछार पड़ती है''''पर फुलमतिया''''?

(फ्लैश बैक) (संगीत)

फुलमतिया : दादा ?

भैरो : कौन है रे ?

फुलमतिया : हम हैं दादा : फुलमतिया ।

भैरो : कैसे आई है ?

फुलमतिया : बलटी चाहिए दादा ।

भैरो : जा, अन्दर तुलसी चौरा के पास रखी है, ले ले।

फुलमतिया : अच्छा दादा ।

(अन्दर जाती है)

भैरो : 'जाकी रही भावना जैसी....' अरे कुलदीप जा तू हीं दे दे बालटी, नहीं तो चौरा फुलमतिया छू देगी....

कुलदीप : अच्छा दादा ।

(पीछे से चौपाई का स्वर आता हुआ फेड आउट हो जाता है.... चूड़ियों की खनखनाहट होती है।)

कुलदीप : फुलमतिया....

फुलमतिया : हाय राम ? पंडित का कर रहे हो ? छोडो....छोड दो....दादा आ रहे हैं....का हो गया है ई तुम्हें ?

कुलदीप : नहीं फुलमतिया....तूने मेरे दिल में एक आग लगा दी है रे....

फुलमतिया : लगता है पण्डित होकर भी बुद्धि नहीं पाई है ? ऐसी आग तो रोज ही लागत और बुझत है पण्डित ? सब ई रस्ते पर नहीं चल पावत।

कुलदीप : ताना मत दे फुलमतिया ? जरूरत पड़ने पर इम्तिहान से नहीं डरता ।

फुलमतिया : ज्यादा सेखी मत बघारो पण्डित ? बलटी दो....

कुलदीप : नहीं फुलमतिया....तेरा छुप-छुपकर रामायण सुनना....तेरी आँखों में तैरता हुआ प्यार....और फिर धीरे से भाग जाना....इन सबने कुलदीप के अन्दर की आग को भड़का दिया है रे....

फुलमतिया : हमरो राय मानों पण्डित ? न आपन धरम बिगाड़ो न हमार धरम बिगाड़ो....मैं रौंड़....वैसे ही विपद की मारी हूँ।

कुलदीप । फुलमतिया, इस तुलसी चौरा की कसम खाकर कहता हूँ रे.... तनिक मेरी ओर देख न....इन अँखियन में....देख इसमें अविश्वास नहीं है....एक जलती हुई आग की लौ दिखाई देगी....एक चाह दिखाई देगी....

फुलमतिया । हमरो जात जानत हो पण्डित ?

कुलदीप : जानता हूँ फुलमतिया, और जानकर भी आज मैं तुझे पकड़कर कह रहा हूँ....कि तेरे बिना यह जीवन व्यर्थ है....मैं तुझे अब कैसे विश्वास दिलाऊँ कि....

(इतने में भैरो की आवाज)

भैरो : कुलदीप ?

कुलदीप : आया दादा, फुलमतिया, आज रात नदी के किनारे वाले बगीचे में, मैं तेरी बाट देखूंगा । तुझे कसम है मेरी, जरूर आना ।

(भैरो अन्दर आ जाता है)

भैरो : क्या कर रहा है रे ?

कुलदीप : फुलमतिया बल्टी साफ कर रही है दादा ।

भैरो : बाल्टी साफ करके वह चली जाएगी, पर तू मेरे साथ चल....
(आकर बैठ जाता है)
हाँ तो रामायण में जहाँ तक पढ़ चुका है, अब उसके आगे पढ़ ।
(किताब के पन्नों की सरसराहट सुनाई पड़ती है)

कुलदीप : (गाता है) कह सीता भा बिधि प्रतिकूला ।
मिलई न पावक मिटइ न सूला ।।
सुनहु विनय मम बिटप असोका ।
सत्य नाम करु हरु मम सोका ।।
(स्वर धीरे-धीरे फेड आउट)

(नाइट इफेक्ट, नदी के पानी का धीरे-धीरे स्वर आता है)

कुलदीप । (धीरे से पुकारता है) फुलमतिया....फुलमतिया....(कहीं से उत्तर नहीं आता)

(जोर से) फुलमतिया ?

फुलमतिया : क्यों चिल्ला रहे हो पण्डित ? तनिक लोक लाज की भी तो चिन्ता करो ।

कुलदीप : फुलमतिया, तू आ गई, मुझे विश्वास नहीं था कि····खैर तू आ गई न अब सब चिन्ता मिट जायेगी ।

फुलमतिया : नहीं पण्डित, चिन्ता मिटी नहीं, बल्कि बढ़ गई, एक बात पूछूं पण्डित····

कुलदीप : कहो फुलमतिया ?

फुलमतिया : पण्डित, तुम तो रोज ही रामायण बाँचते हो न, हमने एक दिन सुना था कि लक्ष्मणजी ने एक रेखा खींच सीता मइया को उसमें बांध दिया था । सीता मैया जैसे ही उसके बाहर मारीच को देख कर निकलीं वैसे ही एक भारी उत्पात खड़ा हो गया ।

कुलदीप : तू तो चोरी-चोरी रामायण सुनकर पूरी पण्डितायन हो गई है रे ।

(हँस पड़ता है)

फुलमतिया : हंसो नहीं पण्डित, हमारी और तुम्हारी जिन्दगी में भी एक लक्ष्मण रेखा खींची हुई है । समझते क्यों नहीं कि उसे लांघने पर यहाँ भी उत्पात खड़ा हो जायेगा ।

कुलदीप : फुलमतिया, जो कमजोर होते हैं न, वही उसे नहीं लांघते, सीता मैया अगर उसे न लाँघी होती तो रावण का वध नहीं होता रे ? हम भी अगर इसे नहीं लाघेंगे····तो हम दोनों अपने में ही मर जायेंगे····हम दोनों को भी जीना है····फुलमतिया ? मैं तेरे बिना नहीं रह सकता । तू क्यों चिन्ता करती है ?

(चूड़ियों की खनखनाहट)

फुलमतिया : मुझे मत छूओ पण्डित, मेरा बदन थरथरा रहा है····मन न जाने कैसा होता जा रहा है ?

कुलदीप : फुलमतिया····

फुलमतिया : पण्डित, एक तरफ तो विश्वास करने को जी चाहता है पर दूसरी ओर विश्वास नहीं हो रहा है····

कुलदीप : फुलमतिया····

फुलमतिया : नहीं पण्डित····मुझे इसीं तरह मरने दो····तुझे देखकर मैं जी लूंगी···· पर तुम्हारी प्रतिष्ठा····इज्जत····सब कुछ चली जायेगी····पण्डित···· (रो पड़ती है) मुझे जाने दो····

कुलदीप : फुलमतिया, तू मेरी बाँहों के घेरे के बाहर कहाँ जायेगी····होश में आ फुलमतिया····फुलमतिया····

फुलमतिया : (स्फुट स्वर में) पण्डित····दादा का कहेंगे ?

कुलदीप : दादा की चिन्ता न कर। हमें आशीर्वाद देंगे दादा।

(फेड आउट, फ्लैश बैक समाप्त)

भैरो : दादा कितना अपंग और कितना असहाय है आज····आँखों में आँसू····मन में खसक। कुलदीप, तू कहाँ मुंह छिपा कर भाग गया है रे (निःश्वास) कर्मनाशा, तू तो गवाह है न, आज १८ वर्ष बाद भी क्या मैं अपनी माँ को भूल सकता हूँ····इस फुलमतिया के मुंह पर भी मैंने अपनी माँ की छाप देखी थी जब यह तुलसी मैया को माथा टेक कर उठ रही थी····सब चला गया····आज यह बखरी भी जाने वाली है।

(धीरे-धीरे बाढ़ के पानी का शोर बढ़ता है। साँय-साँय, हवा का शोर····दूर कहीं कुत्ते के रोने की आवाज सुनाई पड़ रही है···· बादल की गड़गड़ाहट, बिजली की चमक)

न जाने कहाँ से आ गई यह रांड़ मेरा घर चौपट करने। मेरा कुलदीप इसकी खुबसूरती के जाल में फँस गया नहीं तो वह ऐसा नहीं था। किन्तु टीमल की लड़की की यह मजाल····बौड़ी बिस-तुइया बाघे से नजारा मारे। अरे, अपने बाप को खा गई, पति को खा गयी और अब खानदान को भी खाकर ही उसका जी भरेगा।

न जाने कौन सा मंत्र पढ़ दिया कुलदीप पर कि दिन-रात पागलों की तरह आसमान ही देखता रहता था। कबूतर की तरह मुंह फुलाये बैठा रहता था दिन-रात। हंसना, खाना, खेलना सब कुछ भूल गया था....।

(इतने में जोर से किसी मकान के गिरने की आवाज सुनाई पड़ती है। भैरो घबड़ा कर उठ खड़ा होता है....कुत्ता और जोरों से रो पड़ता है....चींखने-चिल्लाने की आवाज आती है....शोर बढ़ता है।)

लगता है एक और मकान कर्मनाशा की पेट में चला गया।

(जोर से चिल्लाता है)

खा जा ? अच्छा है....इस पूरे गाँव को ही निगल जा....मुझे भी....

(जोर से अट्टहास कर उठता है)

न रहेगा यह गाँव, न जाएगी प्रतिष्ठा भैरो पंडित की....किंतु नहीं, यह भी निष्ठुर है। सारे गाँव को निगल जाएगी लेकिन इस राड के घर के पास न जाएगी। उसे छोड़ देगी जिससे वह घूम-घूम कर अपनी कहानी कहती फिरे....

(बाहर से लोगों की आवाज....भैरो दादा....भैरो दादा....)

कौन है ?

इसुर भगत : हम हैं इसुर। (हलकाते हुए)

(किवाड़ खोलता है....इतने लोगों की आवाज सुनाई पड़ती है)

भैरो, जगदंबा की बखरी बाढ़ के पानी में गिर गयी। बहुत नुकसान हो गया जान-माल का। तुम्हार घर भी तो....न हो तो कहीं और हमारे हो बखरी में चले चलो....

भैरो : नहीं भगत, इस बखरी में भैरो पांडे रहते हैं। अगर कर्मनाशा को यही मंजूर है तो मैं क्या करूंगा ? प्राण जाने के भय से मैं अपने बाप-दादा की निशानी छोड़ कर नहीं जाऊंगा। यह जाएगी तो साथ में भैरो को भी लेकर जाएगी....।

जगेसर । आखिर बचने का कुछ उपाय तो करना ही होगा पांडे, सारे गाँव को इस तरह तो छोड़ा नहीं जाएगा। नदी बिना बलि लिये पीछे नहीं लौटेगी.....।

इसुर । जगेसर, उपाय सवेरे सोचा जाएगा। एक का पाप सारे गाँव को निगल जाएगा, यह नहीं चलने दूँगा मुखिया। इसका उपाय सारे गाँव को मिलकर सोचना होगा। भैरो बखरी छोड़ने को राजी नहीं है तो सब लोग चलो।

(भैरो दरवाजा बंद कर लेता है, एक वायलिन करुण स्वर में बज उठती है, बर्तनों की खड़खड़ाहट होती है।)

भैरो : उफ, इतनी प्यास, क्या सब कुछ इसी दिन के लिए मर कर किया था। (पानी पीकर गिलास फेंक देता है) इस लड़के ने मुझे कहीं का नहीं रखा। आज यहाँ आफत मची है, अपने न जाने कहाँ भागकर छिपा है? राम जाने कैसे हो? अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था, भूखा, प्यासा बैठा होगा कहीं.........आ। आ जा कुलदीप! आ जा रे.....फागुन के महीने से मैं आँखें बिछाये तेरी बाट देख रहा हूँ.....देख इस रामायण पर धूल जम गयी है रे..... पांडे के वंश में कभी ऐसी उलट-पलट नहीं हुई है जैसी तूने कर दी..... (रामायण उठाकर पढ़ने लगता है स्वर अत्यन्त करुण है, लगता है कोई रो-रो कर पढ़ रहा है)

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला।
मिलइ न पावक मिटइ न सूला॥
सुनहु विनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

(रोने से हिचकी बँध जाती है)

फ्लैश बैक

कुलदीप : फुलमत, तू जब मेरे पास होती है न तो लगता है यह अमराई ही मेरा घर है, मेरी खुशी है....

फुलमत : और हम इसके मालिक हैं, हैं न ? पंडित, जब तुम रामायण-पाठ करने लगते थे तो यही मन करता था कि दौड़ कर तुम्हारे चरणों में समा जाऊँ, एक नशा छा जाता था पंडित।

कुलदीप : सच ? तो चली क्यूँ नहीं आई ? मैं सारी रामायण एक बार में ही गाकर सुना देता....और फिर उसके बाद तुझे इन बाहों में उठाकर....

फुलमत : उई ?....यह क्या करते हो पंडित ? चाहते हो कि मैं भाग जाऊं ?

कुलदीप : भाग कर तू जायेगी कहाँ ? सारी धरती को फाड़कर तुझे ढूंढ़ लाऊँगा, फुलमत, तुझे कन्धे पर बिठा कर सारी दुनिया की परिक्रमा, एक साँस में लगा सकता हूँ।

फुलमत : फिर लगे शेखी बघारने ? अभी जो दादा आ जायें तो देखते ही दुम दबाकर भाग जाओगे....सामने रह जायेगी यही फुलमतिया।

कुलदीप : तो क्या उनसे लड़ूंगा ? अरे, बड़ों की बातों को सिर झुका कर सुन लेने में ही अपनी भलाई है, लड़ने में नहीं। अपनी चाह तो अपनी है उसमें किसी का दखल बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

फुलमत : तभी तो मैंने सीता की तरह मन, वचन और कर्म से सब तुम्हें सौंप दिया है। लेकिन पण्डित, डर लगता है।

कुलदीप : डर कैसा ?

फुलमत : डर इसी का कि कल जब गाँव वालों को हमारे प्रेम का पता चलेगा तो सारे गाँव में आग लग जायेगी। हर आदमी हमें फाड़ खाने की कोशिश करेगा। तुम तो आदमी हो, तुम्हारे सामने कोई कुछ नहीं कहेगा, पर मुझ पर हर आदमी थूकेगा, पत्थर फेंकेगा। डगर चलना मुश्किल हो जायेगा।

कुलदीप : किसकी मजाल है फुलमत जो तेरी ओर टेढ़ी आँखें देख सके। उसकी आँखें निकाल इसी कर्मनाशा में बहा दूँगा।

फुलमत : और दादा ?

कुलदीप : दादा तो एक पत्थर से निकले हुए झरने की तरह हैं। ऊपर से कठोर, अन्दर से एकदम मुलायम····। मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार।

फुलमत : यह जानते हुए कि मैं नीच जाति की····बेवा····

कुलदीप : तू बेवा नहीं है फुलमत। तूने तो अपने आदमी को देखा भी नहीं था····तू तो क्वारी है क्वारी। मन, वचन और कर्म से तूने अपने को मेरे हवालें किया है न ? तो फिर तेरा पति तो मैं हूँ। अब तू सधवा है सधवा। अगर तू इसका निर्वाह न कर सकेगी तो फिर मैं क्या कर सकूंगा ?

फुलमत : ऐसा न कहो पण्डित, मैं मरते दम तक तुम्हारी हूँ····तुम्हीं मेरे भगवान हो, मेरे सब कुछ हो, मैं कोई ऐसा काम नहीं करूंगी जिससे तुम्हारी इज्जत पर कोई आँच आये।

कुलदीप : मैं तेरी कसम खाता हूँ····तू मेरी है····यह इज्जत, जाति तो केवल एक ढकोसला है फुलमतिया। इंसान को इंसान से अलग करके अपना स्वार्थ साधने का एक तरीका है। न तो तू नीच है, और न मैं ऊँच। इसी ऊँच-नीच को लेकर देश दुनिया में कितना झगड़ा है, फसाद है, अलगाव है। आ····फुलमतिया····एक बार····समा जा····मेरे शरीर में····

फुलमत : अभी नहीं पंडित····अभी नहीं····

कुलदीप : नहीं फुलमतिया····

फुलमत : नहीं पंडित····

कुलदीप : फुलमतिया····

फुलमत : पंडित····आह····तुम····

कुलदीप : फु····ल····म····ति····या····

फुलमत : पं····डि····त····

(एक जोर का संगीत सब कुछ अपने में समा लेता है ।)

(दृश्यान्तर)

भैरो : फुलमतिया की माँ, (क्रोध से) फुलमतिया की माँ ?

जनकिया : हाँ, आई । आप बैठें सरकार ?

भैरो : हम बैठने नहीं आए हैं ? आज तुम्हें कुछ बताने आए हैं ?

जनकिया : कौन गलती हुई सरकार ?

भैरो : जब जमीन की धूल सर पर चढ़ने की कोशिश करे तो आदमी क्या करता है ?

जनकिया : कुछ समझी नहीं सरकार ?

भैरो : तुझे कुछ मालूम है कि फुलमतिया का क्या रंग-ढंग है आजकल ?

जनकिया : का सरकार ?

भैरो : वह मेरे खानदान की इज्जत को मिट्टी में मिला देने पर तुली हुई है ।

जनकिया : का कह रहे हैं सरकार ?

भैरो : ठीक कह रहा हूँ जनकिया ? आजकल वह छुप-छुप कर कुलदीप से मिलती है । रात-बिरात····उसे किसी बात का ख्याल ही नहीं है ।

जनकिया : ऐसा कैसे हो सकता है सरकार ?

भैरो : हो रहा है जनकिया ! तू आँखें बन्द कर अपनी लड़की को देख रही है । वह भूल गयी है कि उसकी जात क्या है, वह यह भी भूल गयी है कि वो बेवा है । अगर उसकी वजह से भैरो पांडे के खान-दान पर कोई आँच आएगी तो मैं कुलदीप की गर्दन मरोड़ दूँगा, और फुलमतिया के लिए क्या व्यवस्था करूँगा····इसको तू अच्छी तरह जानती है····ऐसा कुछ हो, उसके पहले ही मैं तुझे सचेत कर देना चाहता था ।

जनकिया । सरकार !

भैरो । अपने लड़की के पैरों में बेड़ी डाल दे जनकिया । उसे घर में रख। कह दे जवानी को काबू में रखे''''नहीं तो पैरों से मसल दूँगा''''''''
(चल देता है)
(भैरो बैसाखी के सहारे धीरे-धीरे चला जा रहा है, सिर नीचा किए हुए'''')

जगेसर । पाँव लगो भैरो दादा।

भैरो : आनन्द हो मुखिया ।

जगेसर । नदी की ओर कहाँ गए थे दादा ?

भैरो : ऐसे ही तनिक घूमने निकल गया था जगेसर।

जगेसर । ऐसे ही नहीं गये थे दादा ? तुम्हारा यह लटका हुआ चेहरा बता रहा है कि कौनों गम्भीर चिन्ता में मगन हो ।

भैरो । अरे नहीं जगेसर।''''कोई बात नहीं है।

जगेसर । एक बात कहूँ दादा ?
(भैरो चुप हैं)
कुलदीप को सँभालो दादा । जवानी अन्धी होती है । अभी लड़का है। संभाल लोगे तो अच्छा है''''

भैरो । कुलदीप को मैं अच्छी तरह जानता हूँ जगसेर।''''

जगेसर । तो ठीक है दादा''''लड़का है''''और सब हालचाल ठीक है न ?

भैरो । हाँ''''

जगेसर । अच्छा चलता हूँ दादा।
(कुछ क्षण पश्चात्)

भैरो । हरामी कहीं का। हर जगह भूत की तरह घुसा रहेगा'''' ''''अपना काम नहीं देखता''''समझता है भैरो पांडे निरे बछिया के ताऊ हैं''''
(बैसाखी से चलने की आवाज धीरे-धीरे फेड आउट)
(हल्का संगीत—दृश्य परिवर्तित)

फुलमत : बाहर क्यों खड़ी है माँ ? अन्दर चल····

जनकिया : तू कहाँ गयी थी ?

फुलमत : नदी किनारे ? क्यों कोई बात है क्या ?

जनकिया : नदी किनारे कुलदीप पंडित से मिलने गयी थी ? बोलती क्यों नहीं ? फुलमतिया, बोल····चुप मत रह। तेरी चाल-ढाल देखकर मेरे तन में आग लगी है !

फुलमत : मेरी चाल-ढाल में क्या है ?

जनकिया : अभी पूछती है हरजाई ? तेरी चाल-ढाल में क्या नहीं है ? बोल इश्क लड़ाने गयी थी न ? मैं जो पूछ रही हूँ उसका जवाब दे फुलमतिया····नहीं तो मैं इस झोपड़ी में आग लगा दूँगी········तुझे जहर देकर मार डालूंगी। जवाब दे हरामजादी। लोग घर आकर ताने दे जाते हैं,········बेवा लड़की इश्क लड़ा रही है········तू नहीं मानेगी फुलमतिया ? अगर नहीं मानेगी तो जानती है भैरो पांडे तेरी गर्दन उड़ा देंगे····हमें जीता नहीं छोड़ेंगे। बोल, फिर मिलने जाएगी ?

फुलमतिया : कैसे न जाऊँ माँ ?

जनकिया : तू जाएगी ?········तू जाएगी तो तेरा हाथ-पाँव तोड़ दूँगी समझी। (पीटने लगती है) जा····देखती हूँ कैसे जाती है ?····(रोने लगती है) मैं नहीं जानती थी कि मेरी कोख से एक कुलच्छिनी जनम ले रही है, नहीं तो पैदा होते ही गरदन मरोड़ देती····।

(कुछ देर सिसकियों की आवाज आती है····)

फुलमतिया ? तू मेरी मजबूरी समझ बेटी ? हमारे लिए,तुम्हारे लिए, वह सब नहीं है रे जो तू चाहती है। ओस चाटकर प्यास बुझाने की कोशिश मत कर बेटी।

फुलमतिया : माँ, तूने मुझसे जो कुछ भी कहा हमेशा मैंने किया। मैं········अपनी मजबूरी को भी समझती हूँ····और तुम्हारी भी, लेकिन माँ····अब

मेरे लिए लौटना सम्भव नहीं है....किसी भी हालत में नहीं है। माँ तुम एक दया मेरे ऊपर करोगी ?

जनकिया : बोल फुलमतिया। बोल....

फुलमतिया : माँ दया करके मुझे जहर दे दो....जब मुझे मरना ही है तो धीरे से इसी घाट पर मर जाने दो........कोई नहीं जान पाएगा....सभी की तरह यह किस्सा भी हमेशा के लिए कर्मनाशा की लहरों में समा जाएगा....

जनकिया : हाय ? मैं क्या करूँ भगवान् ?....

फुलमतिया : रोओ नहीं माँ ? अगर लोग नहीं चाहते कि हम अपनी जिन्दगी को जिएँ तो मुझ पर इतनी दया करो माँ....

जनकिया : तू नहीं जानती बेटी ! तूने तो अपने सुहाग का मुँह भी नहीं देखा.... नहीं तो भगवान् अगर तुझे सन्तान दिये होता तो तू समझती कि दी हुई जिन्दगी को लेना आसान नहीं है।

फुलमतिया : तो तिल-तिल करके मत मारो माँ। मुझे जीने दो........मुझे जीने दो माँ....अपनी राह पर चलने दो........दूसरों को ही मुझे मार डालने दो....फिर मुझे अपने से कोई शिकायत नहीं रहेगी....मेरो दादा मुझे मार डालेंगे तो मार डाले....लेकिन इस लाश को उठा कर ठिकाने लगाएँगे भी तो वही ? अब मैं लौटने लायक नही रह गयी हूँ माँ....
(रो पड़ती है)
मैंने जो सुहाग विधाता की ओर से पाया है, वही सुहाग मेरा है....मैं मन, वचन, कर्म से अपने सुहाग के साथ दगा नहीं करूँगी।
(दोनों की रुलाई बढ़ती है)

जनकिया : बेटी........

फुलमतिया : अब कुछ न कहो माँ........मेरे भाग्य में जो लिखा है, उसे होने दो। विश्वास रखो माँ मुझे तुम्हारी ओर से कोई शिकायत नहीं होगी.... यहीं कोने में कहीं मुझे मरने दो....मैं सुहागिन हूँ माँ....मुझसे कम से

कम तुम तो मेरा सुहाग मत अलग करो""अपना पैर दो माँ""""
तुम्हारा पैर छूकर मैं तमाम बरसते अंगारे सह लूंगी""माँ""मुझे रोको मत माँ""रोको मत""

(फूट फूट कर रो पड़ती है)

जनकिया : वेटी""(कलेजे से लगा लेती है)""
(धीरे-धीरे रुलाई फेड आउट होती है)
यहीं से एकाएक शादी का बैंड बजना शुरू होता है। सारे गाँव में शोर, उल्लास उठाता है""शोर में आवाज आती है""कितने लोग"" घोड़ा""हाथी""भाइयों चलो""अरे बहुरिया भी आई है""चुप रहो भाई लोग""गाना सुनो"")

गाना—धीरे धीरे फेड इन""

नीच ऊँच कुछ बूझत नहीं, मैं हारी समझाय,
ये दो नैना बड़े बेदरदी, दिल में गड़ गए हाय।
(गाना चलता रहता है)
(फुलमत और कुलदीप की बातचीत ओवरलैप करती रहती है, रह रहकर कभी बातचीत कभी गाना सुनाई पड़ता है)

कुलदीप : फुलमत""
फुलमत : अं !""
कुलदीप : आमों में बौर लग गया""
फुलमत : हाँ पंडित !""सचमुच बौर लग गया।
कुलदीप : कुछ दिनों में टिकोरे भी लग जाएँगे और फिर आम खाने के लिए""
फुलमत : हाँ""आमों में बौर लगते हैं, डालियाँ भार से झुक जाती हैं""फिर टिकोरे लगते हैं""लोग बाट जोहते हैं""आम लगते हैं""पेड़ सार्थक हो जाते हैं""।
(गीत—जीयो""जीओ""नयी नाम है मुन्नीजान""""तबले की

खनक''''घुंघुरुओं की खनखनाहट'''')

झुरु भगत : का भाई चल रहे हो''''अब यहाँ लौडों के मारे बैठना मुश्किल हो गया है। कभी-कभी तो नाच देखने को मिलता है वह भी साले देखने नहीं देते। लांज, सरम सब छोड़कर पीछे पड़ जाते हैं''''।

फ्लैश बैक

कुलदीप : तू तो जब बोलती है फुलमत तो लगता है जैसे पंडिताइन बोल रही है''''।

फुलमत : पंडिताइन तो हूँ ही पंडित ? क्या तुमको इसमें सन्देह है ?

कुलदीप । नहीं रे ? यह तो जन्म के संस्कार हैं। तू तो ऐसे आँखें बन्द कर पड़ी है मानों नशे में खोई है।

फुलमत : पंडित तुमने ही नशा पिलाया और फिर पूछते हो कि नशे में क्यों है ?

(गीत)

कुलदीप : (हँस पड़ता है) फुलमत।

फुलमत : ऊँ।''''

कुलदीप : पतुरिया का गाना सुन रही है ?

फुलमत : क्यों ? मन लहक रहा है ?

कुलदीप : नहीं।

फुलमत : फिर ? यहाँ जो गीत हम दोनों मिलकर गा रहे हैं, इससे अच्छा है वह ?

(दोनों हँस पड़ते हैं)

कुलदीप : रात ज्यादा हो रही है फुलमत।

फुलमत : जानती हूँ।

कुलदीप : फिर जाना नहीं है ?

फुलमत : कहाँ ?

कुलदीप : अरे अपने घर।

फुलमत : हमारा घर तो तुम्हारी यही गोद है पंडित ? नीचे धरती माता,

और ऊपर आसमान""और फिर छिटकी यह चाँदनी""इसे छोड़ कर कहाँ जाएँ ?

कुलदीप : तू तो अलग एक रामायण लिखने लगी""उठ ?

फुलमत : बड़ा आलस है। मुझसे उठा नहीं जाता""तुम उठाओ""

कुलदीप : कैसी-कैसी बात करती है तू ?

फुलमत : कुछ नहीं। तुम नादान हो न। नए हो, समझ भी नहीं सकते""""हाथ पकड़ो""

(इतने में भैरो की कड़कती आवाज सुनाई पड़ती है)

भैरो : कौन है अमराई में ?

कुलदीप : फुलमतिया। तू भाग""

फुलमत : नहीं।

भैरो : बोलता क्यों नहीं ?

कुलदीप : हम हैं कुलदीप।

(बैसाखी की आवाज पास आती है)

भैरो : यहाँ क्या कर रहा है ?

कुलदीप : नदी की ओर आया था दादा।

भैरो : इस समय।

कुलदीप : हाँ ! पेट में दरद था।

भैरो : और फुलमतिया के भी पेट में दरद था ?""""बोलता क्यों नहीं ? कहता क्यों नहीं कि पेट में नहीं आँख में दरद था। नीच। ब्राह्मण का बेटा होकर""पढ़-लिखकर तेरा यह करम ? पानी में डूब क्यों नहीं मरते तुम दोनों ? फुलमतिया ? जिस जिन्दगी की दहलीज पर पैर रख रही है यह तेरे लिए नहीं है। तुम्हें तो अब उस भगवान् के नाम पर इस जिन्दगी को बिताना है। तू अपना धरम-करम तो खराब कर ही रही है, साथ ही इस लड़के की जिन्दगी क्यूं खराब

कर रही है ? क्या मिल जाएगा तुझे डायन ? बोल, बोलती क्यूँ नहीं ?

फुलमत : जिन्दगी कोई किसी की नहीं बिगाड़ सकता दादा ? मेरा जो धरम है, मैं उससे नहीं डिगूंगी····

भैरो : चुप रह हरामजादी कहीं की ? जुबान लड़ाती है ? आँखें लड़ाने के पहले तुझे अपनी औकात सोच लेनी चाहिए थी····भैरो पाडे के खानदान पर जिसने भी अपनी गन्दी आँखें उठाईं····उसकी आँखें निकाल ली जाती हैं····समझी ?

फुलमत : आज मुझे मालूम हो गया दादा कि प्रेम करने से पहले औकात भी देखनी होती है।

भैरो : हाँ।

फुलमत : और यह भी मालूम हुआ कि मेरा खानदान कितना पराक्रमी और ऊँचा है ?

कुलदीप : फुलमत ! (चुपकारता है)

फुलमत : हमें आज की बातों के लिए माफी देना दादा कि जिस सूरत की ओर लोग आँख उठा कर नहीं देख सकते, मैं इतना बोल गयी। मत्था टेकती हूँ····अब मैं जा रही हूँ।

(कुछ क्षण सब सन्न रह जाते हैं)

भैरो : कुलदीप ! सीधे रास्ते पर आ जाओ तो अच्छा होगा। तुमने अभी तक भैरो पाडे का प्यार ही देखा, क्रोध नहीं। जिन हाथों से मैंने पाल-पोस कर बड़ा किया है, उन्हीं हाथों से तेरा गला घोटते भी देर न लगेगी।····

कुलदीप : दादा····हम दोनों····

(थप्पड़ मारने की आवाज आती है)

भैरो : पापी ! नीच ! मैं सोचता था कि तू ठीक हो जाएगा लेकिन

नहीं····तू मेरी, मेरे खानदान और उसकी प्रतिष्ठा की भी हत्या करने पर तुला हुआ हूँ····जा ? सीधे घर चला जा····

पलैश बैक

भैरो : यह सब मैंने किया है····चला गया वह·········अब नहीं लौटेगा···· कुलदीप ? क्या तू कभी नहीं लौटेगा ? मेरा घर····मेरा मन····एक दम अकेला है कुलदीप ?····आजा····कहाँ है रे तू ?····(एक सांस खींच कर कहने लगते हैं) काश फुलमत अपनी ही जाति की होती, अछूत न होती·········कितना अच्छा होता यह विधवा न होती···· तुलसी चौरे पर जब उसने माथा टेका था तो लगा था, जैसे मेरी माँ ही हो ? उसका रूप, चाल-चलन, संकोच, सब कुछ किसी को भी शोभा देने लायक है····अब नहीं····और नहीं सोचूंगा····कुलदीप से मेरा नाता टूट चुका है····
(चिड़ियों की आवाज·········गायों की आवाज आदि सुनाई पड़ती है····सुबह हो गयी····)
उफ ? सारी रात आँखों में ही कट गयी·········चलूं तनिक नदी किनारे····
(एक तरफ से धीरे-धीरे जाँता पीसने का घुर्र घुर्र स्वर सुनाई पड़ता है····उसी पर एक औरत गीत गा रही है····'मोहें जोगनियाँ बना के, कहाँ गइले रे जोगिया'
···· ···· ···· ···· ···· ····

भैरो : उफ ? कैसी पीड़ा है ? अब रोने चली है चुडैल ? अब रोकर क्या होगा ? अच्छा है रो रोकर मर ?····भैरो क्या कर सकता है और जोगी····जोगी तो रमता है····आज यहाँ, कल वहाँ,····नहीं किसी का मीत····चलूं लौट चलूं····
(बाढ़ के पानी का स्वर धीरे-धीरे बढ़ कर सुनाई पड़ता है, कुछ देर बाद छबीला भैरो के दरवाजे की साकल खटखटाता है)

छबीला : दादा, दादा ।

भैरो : कौन है रे ?

छबीला : दादा, हम हैं छबीला ।

भैरो : उफ ? आँख लगते ही''''(खोलता है) क्या है छबीले ?

छबीला : नदी किनारे दादा सारा गाँव जमा है''''लोग फुलमत और उसकी माँ को पकड़ कर ले गये हैं । दादा उसका बच्चा रो रहा है । उसे सब लोग मिल कर नदी में फेंक देंगे । बलि''''दादा बलि ।

भैरो : क्या ?''''ठीक है, तू चल मैं आया''''

छबीला : जल्दी आना दादा''''(चला जाता है)

भैरो : ठीक किया है गाँव वालों ने । न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी । हुँह ? चली थी पांडे के वंश में दाग लगाने''''''''अच्छा हुआ कि कुलदीप आज नहीं है''''लेकिन अगर लोगों ने पुछा कि बच्चे का बाप कौन है तो ?''''''''नहीं । मुझे जाना ही होगा, चाहे जैसे हो उसका मुँह बन्द करना ही होगा ।

(जल्दी निकलने में दरवाजा खड़खड़ा जाता है''''''''बैसाखी की चलने की आवाज सुनाई पड़ने लगती है)

फ्लैश बैक

(गाँव के लोगों का शोर''''नदी की बाढ़ का स्वर''''इसुर भगत चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को शांत कर रहे हैं''''एक जन्मजात शिशु के रोने का भी स्वर आ रहा है''''साथ ही रो रही है जनकिया'''' सब स्वर एक साथ मिले हुए हैं'''')

इसुर भगत : (हकलाते हुए) आप लोग सब लोग शांत हो जाँय ? शान्त'''' काशीनाथ की सरन । भाई लोगों, सोखा ने बताया है कि सारा गाँव पाप में है । उसका पराछित करना होगा''''कर्मनाशा बिना बलि लिये पीछे नहीं हटेगी''''।

(भीड़ से आवाज आती है)

भीड़ : किसकी बली दी जाएगी भगत ?

भगत : जिसने पाप किया है, उसी को कर्मनाशा के हवाले कर दिया जाएगा ?

भीड़ : किसने पाप किया है ? साफ-साफ कहो भगत !

भगत : मुखिया जी बताएँगे सब ?
(धीरे-धीरे बैसाखी पास आने का स्वर)

जगेसर : भाई लोगों। जनकिया की लड़की फुलमतिया, उसने पाप किया है। वह रांड होकर बच्चा जनी है। कर्मनाशा की यह बाढ़ उसी पाप का नतीजा है। जब तक यह पाप गाँव से साफ न किया जाएगा और कर्मनाशा को बलि न दी जाएगी तब तक गाँव की रक्षा न हो सकेगी""।
(बच्चा रो उठता है)

भीड़ : फुलमतिया को बच्चा समेत कर्मनाशा में फेंक दिया जाए।

फुलमतिया : (चिल्ला पड़ती है) नहीं। ऐसा मत करो""भाई लोग ऐसा मत करो। पाप मैंने किया है मुझे मार डालो, पर मेरे बच्चे को मत मारो""दोहाई है, दोहाई है भाई लोग।

जनकिया : दया करो भाई लोग""छोड़ दो उन दोनों को""""हम गाँव छोड़ कर चले जाएँगे""अभी इसी समय""लेकिन इतना बड़ा अत्याचार मत करो भाई लोग""

भीड़ : नहीं मुखिया छोड़ना मत। इसने सारे गाँव की नाक कटा दी।

भीड़ : इससे पूछो कि इस बच्चे का बाप कौन है ?

सब : पूछो मुखिया""पूछो""

जगेसर : बता जनकिया जो गाँव वाले जानना चाहते हैं। बता किसके साथ तेरी बेटी ने मुँह काला किया है ? अब बोलती क्यूँ नहीं ? बोल""

भीड़ : अरे उससे नहीं,""फुलमतिया से पूछो""

जगेसर : फुलमतिया ? बोल""कौन था ? बता दे उसी की बलि दी जाएगी। बोल""नाम बोल""

भीड़ : नहीं बोलती तो इसका बच्चा पहले पानी में फेंको मुखिया ?

फुलमतिया : नहीं····मैं नहीं जानती····मैं नहीं जानती····

(सारी भीड़ हँस पड़ती है)

भीड़ : नाम नहीं बताती तो फेंक दो बच्चा।····

जनकिया : हाय भगवान् ? कहाँ हो तुम····?

(बच्चा जोर से रोने लगता है, लगता है छीना-झपटी हो रही है)

भैरो : (कड़कती आवाज में) ठहरो।

(बैसाखी के खटखट के साथ आगे बढ़ता है।)

जनकिया : (चिल्ला पड़ती है) पंडित ? बच्चे को बचाओ पंडित ?

(बच्चा रोता रहता है)

दोहाई है भगवान् की।

भैरो : (बीच में आकर) कौन जानना चाहता है इस बच्चे के बाप का नाम वह आगे आये और मुझसे पूछे। मुखिया जी. कर्मनाशा की बाढ़ अगर हर साल आती रहेगी तो हर साल बलि देते रहोगे ? अरे यह बाढ़ इस औरत और दुध मुँहे बच्चे की बलि से नहीं रुकेगी····कर्मनाशा हारेगी तुम्हारी मेहनत से····उसके लिए गाँव को पसीना बहाना होगा। बंधा बाँधना होगा····

इस बच्चे का बाप कोई और नहीं, मेरा भाई कुलदीप है ? वह कायर हो सकता है ? ऊँच-नीच, जाति-पाति के डर से वह भाग सकता है लेकिन मैं कायर नहीं हूँ ? मेरे जीते जी मेरे घर की बहू और बच्चे का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता····समझे ?

मुखिया : तो यह है बूढ़े पांडे जी की बहू ? लेकिन पाडे पाप का फल तो भोगना ही होगा, समाज का दिया हुआ दंड तो झेलना ही होगा।

(हल्का हल्का बच्चे के रोने का स्वर आ रहा है)

भैरो : जरूर झेलना होगा ? मैं तुम्हारे समाज को मुखिया जी, कर्मनाशा की बाढ़ से कम नहीं समझता। यहाँ आये एक-एक के पापों को गिनाने लगूँ तो तुम सभी लोगों को, अपने परिवार समेत कर्मनाशा

की पेट में समा जाना होगा''''है कोई तैयार जाने को ?
(बैसाखी के सहारे फुलमत के पास पहुँचता है)
चल बहू । आज नहीं तो कल इस कर्मनाशा को हारना ही होगा ।
(बैसाखी की खट् खट् और बच्चे का रोना धीरे-धीरे फेडआउट होता है)

....

मनोज : यही वह पेड़ है दीपक, जहाँ खड़े थे भैरो दादा और तुम्हारी माँ फुलमती । उस समय कर्मनाशा हारी थी तुम्हारे भैरो चाचा से, और आज यह हारी तुम से''''यही कर्मनाशा के हार की कहानी'''' मैं तुम्हें यहाँ आकर बताना चाहता था''''।

नाटक तथा नाट्य समीक्षा

हिन्दी रंगमंच और प. नारायण प्रसाद 'बेताब'	डा० विद्यावती नम्र	८०.००
प्रसाद तथा मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	डा० शशिशेखर नैथानी	३०-००
अभिनव का रस-विवेचन	नगीनदास पारिख तथा डा० प्रेमस्वरूप गुप्त	२५-००
रंगमंच : एक माध्यम	डा० कुंवरजी अग्रवाल	१५-००
भरतनाट्यशास्त्र तथा आधुनिक प्रासंगिकता	सं० विमल लाठ तथा डा० भानुशंकर मेहता	२५-००
हास्यार्णव तथा उपालम्भ-शतक	सं० डा० वटेकृष्ण	१२-००
गंगाद्वार	पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र	५-००
भारत दुर्दशा (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	३-००
श्री चन्द्रावली नाटिका (,,)	,,	४-००
मुद्रिका	सद्गुरुशरण अवस्थी	२-००
आगाहश्र नाटकावली भाग १ आँख का नशा	सं० आगा जमील अहमद शाह काश्मीरी तथा डा० जमीला आली जाफरी	१५-००
नव एकांकी	प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा डा० विश्वनाथप्रसाद तिवारी	५-००
एकांकी-कुंज	डा० गोपीनाथ तिवारी तथा डा० देवर्षि सनाढ्य	५-००
भुवनेश्वर की रचनाएँ	सं० डा० शुकदेव सिंह	१०-००

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी